

Chapter आठ

भगवान् नृसिंह द्वारा असुरराज का वध

जैसाकि इस अध्याय में बताया गया है, हिरण्यकशिपु अपने ही पुत्र प्रह्लाद महाराज को मार डालने के लिए उद्यत था, किन्तु उस असुर के समक्ष भगवान् श्री नृकेशरी, अर्ध-सिंह, अर्ध-मनुष्य के रूप में प्रकट हुए और उसका वध कर दिया।

प्रह्लाद महाराज के उपदेशों का पालन करने से असुरों के सारे पुत्र भगवान् विष्णु के प्रति अनुरक्त हो उठे। जब यह अनुराग प्रकट हो गया तो षण्ड तथा अमर्क नामक उनके शिक्षक अत्यन्त भयभीत हो उठे कि ये सारे बालक भगवान् के प्रति अधिकाधिक अनुरक्त हो उठेंगे। अतएव अपने को असहाय पाकर वे हिरण्यकशिपु के पास गये और प्रह्लाद की शिक्षा के प्रभाव का विस्तार से वर्णन करने लगे। यह सुनकर हिरण्यकशिपु ने अपने पुत्र प्रह्लाद को मारने का निश्चय किया। हिरण्यकशिपु इतना क्रुद्ध था कि प्रह्लाद महाराज उसके पैरों पर गिर पड़े और उसे शान्त करने के लिए अनेक बातें कहीं, किन्तु वे अपने असुर पिता हिरण्यकशिपु को प्रसन्न नहीं कर पाये। असुर की भाँति हिरण्यकशिपु अपने को

भगवान् से बड़ा विज्ञापित करने लगा, किन्तु प्रह्लाद महाराज ने यह कहते हुए उसे चुनौती दी कि वह ईश्वर नहीं है। उन्होंने घोषित किया कि भगवान् सर्वव्यापी हैं, प्रत्येक वस्तु उनके अधीन है, कोई न तो उनके तुल्य है, न उनसे बढ़कर है। इस प्रकार वे भगवान् का गुणगान करने लगे। उन्होंने अपने पिता से प्रार्थना की कि वे सर्वशक्तिमान परमेश्वर के सामने झुकें।

प्रह्लाद महाराज जितना ही भगवान् का गुणगान करते गए वह राक्षस उतना ही अधिक क्रुद्ध तथा विचलित होता गया। हिरण्यकशिपु ने अपने वैष्णव पुत्र से पूछा कि क्या तेरा ईश्वर महल के ख भों में विद्यमान है? प्रह्लाद महाराज ने तुरन्त ही स्वीकार किया कि चूंकि वे सर्वत्र विद्यमान हैं, अतएव वे इन ख भों में भी हैं। जब हिरण्यकशिपु ने अपने नन्हें पुत्र से यह दर्शन सुना तो उसने इसे बचकानी बात कहते हुए उसे चिढ़ाया और जोर से अपनी मुट्टी ख भे पर दे मारी।

ज्योंही हिरण्यकशिपु ने ख भे पर प्रहार किया कि उससे एक भीषण ध्वनि उत्पन्न हुई। पहले तो असुरराज हिरण्यकशिपु को ख भे के अतिरिक्त कुछ भी नहीं दिखा किन्तु प्रह्लाद महाराज के वचनों को सत्य करने के लिए भगवान् उस ख भे में से नृसिंह देव के अद्भुत अवतार के रूप में प्रकट हुए, जिनका आधा भाग शेर का और आधा मनुष्य का था। हिरण्यकशिपु तुरन्त समझ गया कि भगवान् का यह अद्वितीय अद्भुत रूप उसकी मृत्यु के लिए ही है अतएव वह नृसिंह देव से लड़ने के लिए सन्नद्ध हो गया। भगवान् कुछ काल तक उस असुर से लड़ने की लीला करते रहे। दिन तथा रात के संधिकाल में संध्या समय उन्होंने उस असुर को पकड़ कर अपनी गोद में रख लिया और नाखूनों से उसका पेट विदीर्ण कर डाला। भगवान् ने न केवल असुरराज हिरण्यकशिपु को मारा, अपितु उसके अनेक अनुयायियों का भी वध कर दिया। जब वहाँ पर उनसे लड़ने के लिए कोई न रह गया तो वे गर्जना करते हुए उसके सिंहासन पर जा बैठे।

इस प्रकार सारा ब्रह्माण्ड हिरण्यकशिपु के शासन से मुक्त हो गया और दिव्य आनन्द के मारे हर व्यक्ति अत्यन्त हर्षित हो उठा। तब सारे देवता ब्रह्माजी को आगे करके भगवान् के समीप आये। इनमें बड़े-बड़े साधु पुरुष, पितरगण, सिद्धगण, विद्याधर, नाग, मनु, प्रजापति, गन्धर्व, चारण, यक्ष, किम्पुरुष, वैतालिक, किन्नर तथा अनेक प्रकार के मनुष्य रूप के जीव सम्मिलित थे। वे सब भगवान्

के निकट ही खड़े होकर उनकी प्रार्थना करने लगे। भगवान् सिंहासन पर आरूढ़ थे और उनका आध्यात्मिक तेज चमक रहा था।

श्रीनारद उवाच

अथ दैत्यसुताः सर्वे श्रुत्वा तदनुवर्णितम् ।
जगृहुर्निरवद्यत्वान्नैव गुर्वनुशिक्षितम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-नारदः उवाच—श्री नारद मुनि ने कहा; अथ—तत्पश्चात्; दैत्य-सुताः—असुरों के पुत्र (प्रह्लाद महाराज के सहपाठी); सर्वे—सभी; श्रुत्वा—सुनकर; तत्—उससे (प्रह्लाद से); अनुवर्णितम्—भक्तिमय जीवन के विषय में कथन; जगृहुः—स्वीकार किया; निरवद्यत्वात्—उस उपदेश के श्रेष्ठ उपयोग के कारण; न—नहीं; एव—निस्सन्देह; गुरु-अनुशिक्षितम्—जो उनके गुरुओं ने पढ़ाया था।

नारद मुनि ने आगे कहा : सारे असुरपुत्रों ने प्रह्लाद महाराज के दिव्य उपदेशों की सराहना की और उन्हें अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक ग्रहण किया। उन्होंने षण्ड तथा अमर्क नामक अपने गुरुओं द्वारा दिये गये भौतिकतावादी उपदेशों का तिरस्कार कर दिया।

तात्पर्य : यह प्रह्लाद महाराज जैसे शुद्ध भक्त के उपदेश का प्रभाव है। यदि भक्त योग्य हो, सत्यनिष्ठ हो और कृष्णभावनामृत के प्रति गम्भीर हो तथा यदि वह प्रामाणिक गुरु के उपदेशों का उसी तरह पालन करे जिस तरह प्रह्लाद महाराज नारद मुनि से प्राप्त उपदेशों का पालन अपना उपदेश देते समय कर रहे थे तो ऐसा उपदेश प्रभावशाली होता है। जैसाकि श्रीमद्भागवत (३.२५.२५) में कहा गया है :

सतां प्रसङ्गान् मम वीर्यसंविदो

भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः ।

यदि कोई सत् अर्थात् शुद्ध भक्त द्वारा दिये गये प्रवचन को समझने का प्रयास करता है, तो वे उपदेश अत्यन्त कर्णप्रिय तथा हृदय को भले लगेंगे। इस तरह यदि कोई कृष्णभावनामृत ग्रहण करने के लिए प्रेरित होता है और अपने जीवन में इस विधि का अभ्यास करता है, तो वह निश्चित रूप से भगवद्धाम लौट जाने में सफल होता है। प्रह्लाद महाराज की कृपा से उनके सारे सहपाठी असुर-पुत्र वैष्णव हो गये। उन्हें अपने तथाकथित गुरुओं, षण्ड तथा अमर्क की बातें सुननी पसन्द नहीं आई जो उन्हें केवल कुटूनीति, राजनीति, आर्थिक विकास तथा इन्द्रियतृप्ति के लिए ऐसे ही विषयों की शिक्षा दे रहे थे।

अथाचार्यसुतस्तेषां बुद्धिमेकान्तसंस्थिताम् ।
आलक्ष्य भीतस्त्वरितो राज्ञ आवेदयद्यथा ॥ २ ॥

शब्दार्थ

अथ—तदुपरान्त; आचार्य-सुतः—शुक्राचार्य के पुत्र; तेषाम्—उन (असुर पुत्रों) की; बुद्धिम्—बुद्धि; एकान्त-संस्थिताम्—केवल एक ही विषय, भक्ति, में स्थिर; आलक्ष्य—देखकर; भीतः—भयभीत होकर; त्वरितः—तुरन्त; राज्ञे—राजा (हिरण्यकशिपु) से; आवेदयत्—कह सुनाया; यथा—उचित ढंग से।

जब शुक्राचार्य के पुत्र षण्ड तथा अमर्क ने देखा कि सारे विद्यार्थी असुर पुत्र प्रह्लाद महाराज की संगति से कृष्णभक्ति में आगे बढ़ रहे हैं, तो वे डर गये। अतएव वे असुरराज के पास गये और उनसे सारी स्थिति वर्णन कर दी।

तात्पर्य : बुद्धिम् एकान्त संस्थिताम् शब्द सूचित करते हैं कि प्रह्लाद महाराज के उपदेशों से सारे विद्यार्थी, जिन्होंने उनका उपदेश सुना था, इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि मनुष्य-जीवन का एकमात्र लक्ष्य कृष्णभावनामृत है। तथ्य यह है कि जो भी शुद्ध भक्त की संगति करता है और उसके उपदेश सुनता है, वह कृष्णभावनामृत में स्थिर हो जाता है और भौतिक चेतना से विक्षिप्त नहीं होता। शिक्षकों ने अपने विद्यार्थियों में इसे विशेषतः देखा, अतएव वे डर गये, क्योंकि सारा विद्यार्थीवर्ग धीरे-धीरे कृष्णभावनाभावित होता जा रहा था।

कोपावेशचलद्गात्रः पुत्रं हन्तुं मनो दधे ।
क्षिप्त्वा परुषया वाचा प्रह्लादमतदर्हणम् ।
आहेक्षमाणः पापेन तिरश्चीनेन चक्षुषा ॥ ३ ॥
प्रश्रयावनतं दान्तं बद्धाञ्जलिमवस्थितम् ।
सर्पः पदाहत इव श्वसन्प्रकृतिदारुणः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

कोप-आवेश—अत्यन्त क्रुद्ध मुद्रा में; चलत्—काँपता हुआ; गात्रः—पूरा शरीर; पुत्रम्—अपने पुत्र को; हन्तुम्—मारने के लिए; मनः—मन को; दधे—स्थिर किया; क्षिप्त्वा—डाँटते हुए; परुषया—अत्यन्त कटु; वाचा—वाणी से; प्रह्लादम्—महाराज प्रह्लाद को; अ-तत्-अर्हणम्—(अपने उत्तम चरित्र तथा कोमल आयु के कारण) प्रताड़ना के अयोग्य; आह—कहा; ईक्षमाणः—क्रोध में उसे देखते हुए; पापेन—अपने पापकर्मों के कारण; तिरश्चीनेन—टेढ़ी; चक्षुषा—आँखों से; प्रश्रय-अवनतम्—अत्यन्त विनम्रता से; दान्तम्—संयमित; बद्ध-अञ्जलिम्—हाथ जोड़े; अवस्थितम्—स्थित; सर्पः—साँप; पद-आहतः—पाँव से कुचला जाकर; इव—सदृश; श्वसन्—फुफकारते; प्रकृति—प्रकृति से; दारुणः—अत्यन्त दुष्ट।

जब हिरण्यकशिपु सारी स्थिति समझ गया तो वह इतना अधिक क्रुद्ध हुआ कि उसका सारा शरीर काँपने लगा। इस तरह उसने अन्ततः अपने पुत्र प्रह्लाद को मार डालने का निश्चय कर लिया। वह स्वभाव से अत्यन्त क्रूर था और अपने को अपमानित हुआ जानकर वह पाँव से

कुचले सर्प की भाँति फुफकारने लगा। उसका पुत्र प्रह्लाद शान्त, विनम्र तथा उदार था, वह इन्द्रियसंयमी था और हिरण्यकशिपु के समक्ष हाथ जोड़े खड़ा था। वह अपनी आयु तथा आचरण के अनुसार प्रताड़ना के योग्य न था। फिर भी हिरण्यकशिपु ने टेढ़ी नजर से उसे घूरते हुए निम्नलिखित कटु शब्दों के द्वारा फटकारा।

तात्पर्य : जब कोई परम अधिकारी भक्त के प्रति धृष्ट बन जाता है, तो उसे प्रकृति के नियमों द्वारा दण्डित होना पड़ता है। उसकी आयु क्षीण हो जाती है, उस पर गुरुजनों का आशीर्वाद नहीं रह जाता और उसके पुण्यों का फल जाता रहता है। उदाहरणार्थ हिरण्यकशिपु ने भौतिक जगत में इतनी शक्ति प्राप्त कर ली थी कि वह स्वर्गलोक समेत लगभग ब्रह्माण्ड के सारे लोकों को जीत सकता था। किन्तु अब प्रह्लाद जैसे वैष्णव के प्रति अपने दुर्व्यवहार के कारण उसकी तपस्या के सभी फल घट गए। जैसाकि श्रीमद्भागवत (१०.४.४६) में कहा गया है—

आयुः श्रियं यशो धर्म लोकान् आशिष एव च ।

हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रमः ॥

“जब कोई किसी महात्मा के साथ दुर्व्यवहार करता है, तो उसकी आयु, ऐश्वर्य, यश, धर्म, सम्पत्ति तथा सौभाग्य सभी नष्ट हो जाते हैं।”

श्रीहिरण्यकशिपुरुवाच

हे दुर्विनीत मन्दात्मन्कुलभेदकराधम ।

स्तब्धं मच्छासनोद्धृतं नेष्ये त्वाद्य यमक्षयम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

श्री-हिरण्यकशिपुः उवाच—वरदान प्राप्त हिरण्यकशिपु ने कहा; हे—अरे; दुर्विनीत—अत्यन्त बेशर्म, धृष्ट; मन्द-आत्मन्—अरे मूर्ख; कुल-भेद-कर—परिवार को फोड़ने वाले; अधम—अरे नीच; स्तब्धम्—अत्यन्त हठी; मत्-शासन—मेरी आज्ञा का; उद्धृतम्—उल्लंघन करके; नेष्ये—मैं भेजूँगा; त्वा—तुमको; अद्य—आज; यम-क्षयम्—मृत्यु के अधीक्षक यमराज के पास।

हिरण्यकशिपु ने कहा : अरे उद्दण्ड, निपट दुर्बुद्धि, परिवार को फोड़ने वाले! अरे नीच!

तुमने अपने ऊपर शासन करने वाली शक्ति का उल्लंघन किया है, अतएव तू हठी मूर्ख है। आज मैं तुझे यमराज के घर भेजूँगा।

तात्पर्य : हिरण्यकशिपु ने अपने वैष्णव पुत्र की भर्त्सना उसके दुर्विनीत अर्थात् असभ्य, उद्दण्ड या बेशर्म होने के कारण की। किन्तु श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने इस दुर्विनीत शब्द का अर्थ सरस्वती

देवी की कृपा लगाया है। उनका कहना है कि दुः का अर्थ यह भौतिक जगत है। इसकी पुष्टि भगवान् कृष्ण द्वारा *भगवद्गीता* में दिये गये उपदेश से होती है कि यह भौतिक जगत *दुःखालयम्* है अर्थात् भौतिक दशाओं से ओत-प्रोत है। *वि* का अर्थ *विशेष* होता है और *नीत* का अर्थ है 'लाया गया'। भगवान् की कृपा से प्रह्लाद महाराज को भौतिक जगत के लोगों को यह शिक्षा देने के लिए लाया गया था कि वे सब किस तरह इस भव-सागर से बाहर निकलें। भगवान् कृष्ण कहते हैं—*यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।* जब सारी जनता या कुछ लोग अपने कर्तव्य को भूल जाते हैं, तो भगवान् कृष्ण प्रकट होते हैं। जब कृष्ण उपस्थित नहीं रहते तो उनका भक्त उपस्थित रहता है, लेकिन ध्येय एक ही होता है—बेचारे बद्धजीवों को माया के चंगुल से मुक्त करना जो उन्हें दुख देती रहती है।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर और भी बताते हैं कि *मन्दात्मन्* शब्द का अर्थ है *मन्द*—अत्यन्त बुरा या आध्यात्मिक अनुभूति में अत्यन्त कमजोर। जैसाकि *श्रीमद्भागवत* (१.१.१०) में कहा गया है—*मन्दाः सुमनन्दमतयो मन्दभाग्या।* प्रह्लाद महाराज उन सभी *मन्दों* अर्थात् मायावशीभूत जीवों के पथ-प्रदर्शक हैं। वे इस जगत में मन्द तथा दुष्ट जीवों के भी उपकारी हैं। *कुलभेदकराधम्*—प्रह्लाद महाराज अपने कार्यों से उन महापुरुषों को मात कर गये जिन्होंने बड़े-बड़े कुल स्थापित किये थे। प्रत्येक व्यक्ति अपने ही परिवार में तथा अपने वंश को विख्यात बनाने में रुचि रखता है, किन्तु प्रह्लाद महाराज इतने उदार थे कि उन्होंने जीव जीव में कोई भेदभाव नहीं बरता। अतएव वे उन *प्रजापतियों* से भी महान् थे जिन्होंने अपने वंशों को स्थापित किया था। *स्तब्धम्* शब्द हठी या जिद्दी का सूचक है। भक्त असुरों के आदेशों की कभी परवाह नहीं करता। जब वे आदेश देते हैं, तो वह शान्त रहता है। भक्त तो कृष्ण के आदेशों की परवाह करता है, असुरों या अभक्तों की नहीं। वह असुरों का सम्मान नहीं करता भले ही वह उसका पिता क्यों न हो। *मच्छासनोद् वृत्तम्*—प्रह्लाद महाराज अपने असुर पिता के प्रति आज्ञाकारी न थे। *यम-क्षयम्*—प्रत्येक बद्धजीव यमराज के वश में है, किन्तु हिरण्यकशिपु कहता था कि वह प्रह्लाद महाराज को ही अपना मोक्षदाता मानता है, क्योंकि प्रह्लाद महाराज हिरण्यकशिपु को जन्म-मरण चक्कर से मुक्त करने वाले थे। वे एक महान् भक्त होने के नाते एक योगी से बढ़कर थे, अतएव हिरण्यकशिपु को *भक्तियोगियों* के समाज में लाया जाना था। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने

इन शब्दों की अत्यन्त रोचक व्याख्या की है, जिससे वे विद्या की देवी सरस्वती के पक्ष से समझे जा सके।

क्रुद्धस्य यस्य कम्पन्ते त्रयो लोकाः सहेश्वराः ।
तस्य मेऽभीतवन्मूढ शासनं किं बलोऽत्यगाः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

क्रुद्धस्य—क्रुद्ध होने पर; यस्य—जिसके; कम्पन्ते—काँपते हैं; त्रयः लोकाः—तीनों लोक; सह-ईश्वराः—अपने-अपने नायकों समेत; तस्य—उस; मे—मेरे (हिरण्यकशिपु के); अभीत-वत्—निर्भीक; मूढ—धूर्त; शासनम्—आदेश; किम्—क्या; बलः—बल; अत्यगाः—अति हो गई है।

मेरे दुष्ट पुत्र प्रह्लाद! तुम जानते हो कि जब मैं क्रुद्ध होता हूँ तो तीनों लोक अपने-अपने नायकों सहित काँपने लगते हैं। तो फिर तुम किसके बल पर इतने धृष्ट हो गये हो कि तुम निर्भीक होकर मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर रहे हो?

तात्पर्य : शुद्ध भक्त तथा भगवान् के मध्य अत्यन्त मधुर सम्बन्ध होता है। भक्त कभी भी अपने को शक्तिशाली नहीं मानता, उल्टे उसे इतना दृढ़ विश्वास रहता है कि समस्त संकटों से कृष्ण अपने भक्तों की रक्षा करेंगे, अतएव वह कृष्ण के चरणकमलों पर पूरी तरह समर्पित हो जाता है। भगवान् कृष्ण स्वयं भगवद्गीता (९.३१) में कहते हैं—*कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति*—हे कुन्ती पुत्र! तुम निर्भीक होकर घोषित कर दो कि मेरा भक्त कभी मरता नहीं। भगवान् ने स्वयं यह घोषणा न करके अर्जुन से घोषित करने का अनुरोध किया, क्योंकि कभी-कभी कृष्ण अपना विचार बदल देते हैं, अतएव लोग उन पर विश्वास नहीं भी कर सकते थे। इस तरह कृष्ण ने अर्जुन से कहा कि वह यह घोषित करे कि भगवद्भक्त कभी विनष्ट नहीं होता।

हिरण्यकशिपु हैरान था कि उसका पाँच वर्ष का बालक इतना निर्भीक कैसे हो सकता है कि वह अपने इतने महान् तथा शक्तिशाली पिता के आदेश की परवाह न करे। भक्त भगवान् के अतिरिक्त अन्य किसी के आदेश का पालन नहीं कर सकता। ऐसी है भक्त की स्थिति। हिरण्यकशिपु समझ गया कि यह बालक हो न हो अत्यन्त शक्तिशाली है, क्योंकि वह उसके आदेशों की परवाह नहीं कर रहा था। अतएव हिरण्यकशिपु ने अपने पुत्र से पूछा—*किम् बलः*—तुमने मेरे आदेश का उल्लंघन कैसे किया? तुमने किसके बल पर ऐसा किया है?

श्रीप्रह्लाद उवाच
 न केवलं मे भवतश्च राजन्
 स वै बलं बलिनां चापरेषाम् ।
 परेऽवरेऽमी स्थिरजङ्गमा ये
 ब्रह्मादयो येन वशं प्रणीताः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

श्री-प्रह्लादः उवाच—प्रह्लाद महाराज ने उत्तर दिया; न—नहीं; केवलम्—केवल; मे—मेरा; भवतः—आपका; च—तथा; राजन्—हे राजा; सः—वह; वै—निस्सन्देह; बलम्—बल; बलिनाम्—बलियों के; च—तथा; अपरेषाम्—अन्यों का; परे—सम्माननीय; अवरे—अधीन; अमी—वे; स्थिर-जङ्गमाः—चल या अचल जीव; ये—जो; ब्रह्मा-आदयः—ब्रह्मा इत्यादि; येन—जिसके द्वारा; वशम्—वश में; प्रणीताः—लाया गया।

प्रह्लाद महाराज ने कहा, हे राजन्, आप जिस बल के मेरे स्रोत को जानना चाह रहे हैं वह आपके बल का भी स्रोत है। निस्सन्देह, समस्त प्रकार के बलों का मूल स्रोत एक ही है। वह न केवल आपका या मेरा बल है, अपितु सबों का एकमात्र बल है। उसके बिना किसी को कोई बल नहीं मिल सकता। चाहे चल हो या अचल, उच्च हो या नीच, ब्रह्मा समेत सारे जीव भगवान् के बल द्वारा नियंत्रित हैं।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण भगवद्गीता (१०.४१) में कहते हैं—

यद् यद् विभूतिमत् सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
 तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोऽशसम्भवम् ॥

“जान लो कि सारी सुन्दर, यशस्वी तथा शक्तिशाली सृष्टियाँ मेरे तेज के एक स्फुलिंग से प्रकट होती हैं।” प्रह्लाद महाराज द्वारा इस की पुष्टि की जा रही है। यदि कोई मनुष्य कहीं कोई अद्वितीय बल या शक्ति देखता है, तो वह भगवान् से उद्भूत हुई है। उदाहरणार्थ, अग्नि की कई कोटियाँ हैं, किन्तु वे सभी सूर्य से ऊष्मा तथा प्रकाश प्राप्त करती हैं। इसी प्रकार सारे जीव, चाहे बड़े हों या छोटे, भगवान् की दया पर निर्भर हैं। मनुष्य का एकमात्र कर्तव्य है कि वह उनकी शरण में जाये, क्योंकि वह दास है और कभी भी स्वामी का स्वतंत्र पद प्राप्त नहीं कर सकता। मनुष्य स्वामी का पद स्वामी की दया से ही प्राप्त कर सकता है, स्वतंत्र रूप से नहीं जब तक कोई इस दर्शन को समझ नहीं लेता तब तक वह मूढ बना रहता है। दूसरे शब्दों में, वह बुद्धिमान नहीं होता। जिन मूढ़ों या गधों में बुद्धि नहीं होती वे भगवान् की शरण में नहीं जा सकते।

जीव की अधीन अवस्था समझने में लाखों जन्म लग जाते हैं, किन्तु जब कोई वास्तव में विज्ञ हो जाता है, तो वह भगवान् की शरण में जाता है। भगवान् *भगवद्गीता* (७.१९) में कहते हैं—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते ।

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥

“जो जीव वास्तव में ज्ञानी होता है, वह अनेक जन्म-जन्मांतरों के बाद मुझे समस्त कारणों का कारण समझ कर मेरी शरण में आता है। ऐसा महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है।” प्रह्लाद महाराज *महात्मा* थे, अतएव उन्होंने भगवान् के चरणकमलों में पूर्ण आत्म-समर्पण कर दिया था। उन्हें दृढ़ विश्वास था कि उनके कृष्ण समस्त परिस्थितियों में उन्हें सुरक्षा प्रदान करेंगे।

स ईश्वरः काल उरुक्रमोऽसा-

वोजः सहः सत्त्वबलेन्द्रियात्मा ।

स एव विश्वं परमः स्वशक्तिभिः

सृजत्यवत्यत्ति गुणत्रयेशः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

सः—वह (भगवान्); ईश्वरः—परम नियन्ता; कालः—काल; उरुक्रमः—भगवान् जिनके सारे कार्य असाधारण होते हैं; असौ—वे ही; ओजः—इन्द्रियों की शक्ति; सहः—मन की शक्ति; सत्त्व—स्थैर्य; बल—शारीरिक शक्ति; इन्द्रिय—तथा इन्द्रियों का; आत्मा—आत्मा; सः—वह; एव—निस्सन्देह; विश्वम्—सारा विश्व; परमः—परम; स्व-शक्तिभिः—अपनी विविध दिव्य शक्तियों से; सृजति—सृजन करता है; अवति—पालन करता है; अत्ति—संहार कर देता है; गुण-त्रय-ईशः—तीनों गुणों का स्वामी।

परम नियन्ता एवं काल रूप भगवान् इन्द्रियों के बल, मन के बल, शरीर के बल तथा इन्द्रियों के प्राण हैं। उनका प्रभाव असीम है। वे समस्त जीवों में श्रेष्ठ तथा प्रकृति के तीनों गुणों के नियन्ता हैं। वे अपनी शक्ति से इस ब्रह्माण्ड का सृजन, पालन तथा संहार करते हैं।

तात्पर्य : चूँकि यह भौतिक जगत तीनों गुणों द्वारा चलायमान होता है और चूँकि भगवान् उनका स्वामी है अतएव भगवान् इस भौतिक जगत का सृजन, पालन तथा संहार करते हैं।

जह्यासुरं भावमिमं त्वमात्मनः

समं मनो धत्स्व न सन्ति विद्विषः ।

ऋतेऽजितादात्मन उत्पथे स्थितात्

तद्धि ह्यनन्तस्य महत्समर्हणम् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

जहि—त्याग दो; आसुरम्—आसुरी; भावम्—प्रवृत्ति को; इमम्—इस; त्वम्—तुम (मेरे पिता); आत्मनः—अपने; समम्—बराबर; मनः—मन; धत्स्व—बनाओ; न—नहीं; सन्ति—हैं; विद्विषः—शत्रु; ऋते—के अतिरिक्त; अजितात्—अनियंत्रित; आत्मनः—मन; उत्पथे—अवांछित प्रवृत्तियों के कुमार्ग पर; स्थितात्—स्थित होकर; तत् हि—वह (प्रवृत्ति); हि—निस्सन्देह; अनन्तस्य—असीम भगवान् की; महत्—सर्वश्रेष्ठ; समर्हणम्—पूजा-विधि।

प्रह्लाद महाराज ने कहा : हे पिता, आप अपनी आसुरी प्रवृत्ति त्याग दें। आप अपने हृदय में शत्रु-मित्र में भेदभाव न लाएँ, आप अपने मन को सबों के प्रति समभाव बनाएँ। इस संसार में अनियंत्रित तथा पथभ्रष्ट मन के अतिरिक्त कोई शत्रु नहीं है। जब कोई मनुष्य प्रत्येक व्यक्ति को समता के पद पर देखता है तभी वह भगवान् की ठीक से पूजा करने की स्थिति में होता है।

तात्पर्य : जब तक मन को भगवान् के चरणकमलों में स्थिर नहीं कर लिया जाता तब तक मन को वश में कर पाना असम्भव है। जैसाकि अर्जुन *भगवद्गीता* (६.३४) में कहता है—

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।

तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥

“हे कृष्ण! मन चंचल, उदंड, जिद्दी तथा अत्यन्त प्रबल होता है और मेरी समझ में इसे दमित कर पाना वायु को नियंत्रित करने की अपेक्षा अधिक कठिन है।” मन को नियंत्रित करने की प्रामाणिक विधि है मन को भगवान् की सेवा में स्थिर कर देना। हम अपने मन के आदेशानुसार शत्रु तथा मित्र बनाते हैं, किन्तु वास्तव में न तो मित्र होते हैं और न शत्रु। *पण्डिताः समदर्शिनः । समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ।* इसे समझना ही भक्ति के राज्य में प्रवेश करने की पहली शर्त है।

दस्यून्युरा षण्ण विजित्य लुम्पतो

मन्यन्ते एके स्वजिता दिशो दश ।

जितात्मनो ज्ञस्य समस्य देहिनां

साधोः स्वमोहप्रभवाः कुतः परे ॥ १० ॥

शब्दार्थ

दस्यून—लुटेरे; पुरा—प्रारम्भ में; षट्—छह; न—नहीं; विजित्य—जीत कर; लुम्पतः—किसी की सारी सम्पत्ति चुराते हुए; मन्यन्ते—मानते हैं; एके—कुछ; स्व-जिताः—जीता हुआ; दिशः दश—दसों दिशाएँ; जित-आत्मनः—जिसने इन्द्रियों को जीत लिया है, इन्द्रियजित; ज्ञस्य—विद्वान का; समस्य—समदर्शी; देहिनाम्—समस्त जीवों के प्रति; साधोः—ऐसे साधु पुरुष का; स्व-मोह-प्रभवाः—अपने ही मोह से उत्पन्न; कुतः—कहाँ; परे—शत्रु या विरोधी तत्त्व।

प्राचीन काल में आपके समान ही अनेक मूढ हुए हैं जिन्होंने उन छह शत्रुओं को नहीं जीता जो शरीर रूपी सम्पत्ति को चुरा ले जाते हैं। ये मूढ यह सोचकर गर्वित होते हैं “मैंने तो दसों दिशाओं के सारे शत्रुओं को जीत लिया है।” किन्तु यदि कोई व्यक्ति इन छह शत्रुओं पर विजयी

होता है और सारे जीवों पर समभाव रखता है, तो उसके लिए शत्रु नहीं होते। शत्रु की कल्पना मूर्खतावश की जाती है।

तात्पर्य : इस संसार में प्रत्येक व्यक्ति सोचता है कि उसने अपने शत्रुओं को जीत लिया है, किन्तु वह यह नहीं समझ पाता कि उसके शत्रु तो उसका अनियंत्रित मन तथा इन्द्रियाँ हैं (*मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति*)। इस संसार में प्रत्येक व्यक्ति अपनी इन्द्रियों का दास बन चुका है। मूलतः प्रत्येक व्यक्ति कृष्ण का दास होता है, किन्तु अज्ञानवश वह इसे भूल जाता है और इस तरह वह कामेच्छा, क्रोध, लोभ, प्रमत्तता तथा ईर्ष्यावश माया की सेवा में लग जाता है। वास्तव में प्रत्येक व्यक्ति भौतिक नियमों के परिणामों पर आश्रित है फिर भी वह अपने को स्वतंत्र समझता है और सोचता है कि उसने सारी दिशाएँ जीत ली हैं। निष्कर्ष यह निकला कि जो व्यक्ति यह सोचता है कि उसके अनेक शत्रु हैं वह अज्ञानी है जब कि कृष्णभावनाभावित व्यक्ति जानता है कि मनुष्य के भीतर के शत्रुओं—अनियंत्रित मन तथा इन्द्रियों—के अतिरिक्त कोई अन्य शत्रु नहीं है।

श्रीहिरण्यकशिपुरुवाच

व्यक्तं त्वं मर्तुकामोऽसि योऽतिमात्रं विकत्थसे ।

मुमूर्षूणां हि मन्दात्मन्ननु स्युर्विक्लवा गिरः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

श्री-हिरण्यकशिपुः उवाच—वर प्राप्त हिरण्यकशिपु ने कहा; व्यक्तम्—स्पष्ट रूप से; त्वम्—तुम; मर्तु-कामः—मृत्यु के इच्छुक; असि—हो; यः—जो; अतिमात्रम्—असीम; विकत्थसे—डोंग मार रहे हो (मानो तुमने इन्द्रियों जीत ली हों और तुम्हारे पिता ने न जीती हों); मुमूर्षूणाम्—तुरन्त ही मरने वाले व्यक्तियों का; हि—निस्सन्देह; मन्द-आत्मन्—हे मूर्ख; ननु—निश्चय ही; स्युः—हो जाते हैं; विक्लवाः—ऊटपटाँग; गिरः—शब्द।

हिरण्यकशिपु ने उत्तर दिया: रे मूर्ख! तू मेरे महत्त्व को घटाने का प्रयास कर रहा है मानो तू मुझसे अधिक इन्द्रिय-संयमी है। यह अति-बुद्धिमत्ता है। अतएव मैं समझ रहा हूँ कि तुम मेरे हाथों मरना चाहते हो, क्योंकि ऐसी बेसिर-पैर की (ऊटपटाँग) बातें वे ही करते हैं, जो मरणासन्न होते हैं।

तात्पर्य : *हितोपदेश* में कहा गया है—*उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये*। यदि किसी मूर्ख व्यक्ति को अच्छा उपदेश दिया जाता है, तो वह उसका लाभ न उठा कर उल्टे और अधिक क्रुद्ध होता है। प्रह्लाद महाराज के प्रामाणिक उपदेशों को उसके पिता हिरण्यकशिपु ने सत्य करके नहीं माना प्रत्युत वह शुद्ध भक्त एवं महान् पुत्र पर अधिकाधिक क्रुद्ध हो उठा। ऐसी कठिनाई हमेशा उत्पन्न हो जाती है

जब कोई भक्त हिरण्यकशिपु जैसे व्यक्तियों को, जो धन तथा स्त्रियों द्वारा आकृष्ट होते हैं, कृष्णभावनामृत का उपदेश देता है (हिरण्य का अर्थ है “सोना” तथा कशिपु का अर्थ है “बढ़िया गद्दा”)। यही नहीं, पिता कभी नहीं चाहता कि उसका पुत्र उसे उपदेश दे, विशेष रूप से यदि पिता असुर हो। किन्तु प्रह्लाद महाराज का वैष्णव उपदेश अप्रत्यक्षतः उनके आसुरी पिता पर फलित हो रहा था, क्योंकि हिरण्यकशिपु कृष्ण तथा उनके भक्त के प्रति अत्यधिक ईर्ष्या के कारण अपने मारे जाने के लिए नृसिंहदेव को शीघ्रता से बुला रहा था। इस प्रकार वह साक्षात् भगवान् द्वारा मारे जाने के लिए तेजी ला रहा था। यद्यपि हिरण्यकशिपु असुर था, किन्तु यहाँ उसे श्री शब्द से पुकारा गया है। क्यों? इसका उत्तर यह है कि सौभाग्यवश उनका पुत्र प्रह्लाद महाराज जैसा महाभागवत था। इस प्रकार असुर होते हुए भी उसे मोक्ष प्राप्त होगा और वह भगवद्धाम लौटेगा।

यस्त्वया मन्दभाग्योक्तो मदन्यो जगदीश्वरः ।

क्वासौ यदि स सर्वत्र कस्मात्स्तम्भे न दृश्यते ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; त्वया—तेरे द्वारा; मन्द-भाग्य—अरे अभाग्य; उक्तः—कहा गया; मत्-अन्यः—मेरे अतिरिक्त; जगत्-ईश्वरः—ब्रह्माण्ड का परम नियन्ता; क्व—कहाँ; असौ—वही; यदि—यदि; सः—वह; सर्वत्र—सभी जगह (सर्वव्यापी); कस्मात्—क्यों; स्तम्भे—मेरे समक्ष के ख भे में; न दृश्यते—नहीं दिखता।

अरे अभाग्ये प्रह्लाद! तूने सदैव मेरे अतिरिक्त किसी परम पुरुष का वर्णन किया है, जो हर एक के ऊपर है, हर एक का नियन्ता है तथा जो सर्वव्यापी है। लेकिन वह है कहाँ? यदि वह सर्वत्र है, तो वह मेरे समक्ष के इस ख भे में क्यों उपस्थित नहीं है?

तात्पर्य : कभी-कभी असुरगण यह घोषित करते हैं कि वे ईश्वर के अस्तित्व को इसलिए नहीं मानते, क्योंकि वे उन्हें देख नहीं सकते। किन्तु असुर जो कुछ नहीं जानता उसका वर्णन स्वयं भगवान् ने भगवद्गीता (७.२५) में किया है—*नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः*—“मैं कभी मूर्ख तथा अज्ञानी के समक्ष प्रकट नहीं होता। उनके लिए मैं योगमाया से आवृत रहा करता हूँ।” भगवान् केवल भक्तों द्वारा देखे जाने के लिए अनावृत रहते हैं, लेकिन अभक्त उन्हें नहीं देख सकते। भगवान् के दर्शन पाने की योग्यता का वर्णन *ब्रह्म-संहिता* (५.३८) में किया गया है—*प्रेमाञ्जनच्छुरितभक्तिविलोचनेन सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति*। जिस भक्त ने भगवान् कृष्ण के प्रति सच्चा प्रेम विकसित कर लिया है, वह उन्हें सर्वत्र सदा देख सकता है, किन्तु असुर उन्हें नहीं देख सकता, क्योंकि उसे परमेश्वर का

स्पष्ट ज्ञान नहीं है। जब हिरण्यकशिपु प्रह्लाद महाराज को मार डालने की धमकी दे रहा था तो प्रह्लाद ने निश्चित रूप से अपने तथा अपने पिता के समक्ष खड़े हुए ख भे को देखा और यह भी देखा कि भगवान् उसे अपने आसुरी पिता के शब्दों से न डरने के लिए प्रोत्साहित करने हेतु उस ख भे में उपस्थित हैं। भगवान् उसकी रक्षा करने के लिए उपस्थित थे। हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद महाराज के कथन पर ध्यान देते हुए उससे पूछा “बोल, तेरा ईश्वर कहाँ है?” प्रह्लाद महाराज ने उत्तर दिया, “वे सर्वत्र हैं।” तब हिरण्यकशिपु ने फिर पूछा “तो वह मेरे सामने वाले ख भे में क्यों नहीं है?” इस तरह भक्त समस्त परिस्थितियों में परमेश्वर का सदैव दर्शन कर सकता है, जबकि अभक्त ऐसा नहीं कर पाता।

यहाँ पर प्रह्लाद महाराज के पिता ने उसे ‘सर्वाधिक अभागा’ कहकर सम्बोधित किया है। हिरण्यकशिपु अपने आपको सर्वाधिक भाग्यशाली समझता है, क्योंकि वह ब्रह्माण्ड की सम्पत्ति का स्वामी था उसके वैध पुत्र प्रह्लाद महाराज को ही यह विशाल सम्पत्ति उत्तराधिकार में मिलनी थी, किन्तु वह अपनी धृष्टता के कारण अपने पिता के हाथों से मरने जा रहा था। अतएव प्रह्लाद महाराज के असुर पिता ने उसे अत्यन्त अभागा समझा, क्योंकि वह उसकी सम्पत्ति का उत्तराधिकार प्राप्त नहीं कर सकेगा। हिरण्यकशिपु को ज्ञात न था कि प्रह्लाद महाराज तीनों लोकों में सर्वाधिक भाग्यशाली पुरुष थे, क्योंकि उनकी रक्षा परमेश्वर कर रहे थे। ऐसी होती है अज्ञानता असुरों की। वे यह नहीं जानते कि भक्त समस्त परिस्थितियों में भगवान् द्वारा रक्षित होता है (कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति)।

सोऽहं विकथ्यमानस्य शिरः कायाद्धरामि ते ।

गोपायेत हरिस्त्वाद्य यस्ते शरणमीप्सितम् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; अहम्—मैं; विकथ्यमानस्य—ऐसे अनर्गल प्रलाप करने वालों का; शिरः—सिर; कायात्—शरीर से; हरामि—छिन्न कर दूँगा; ते—तुम्हारा; गोपायेत—वह तुम्हारी रक्षा करे; हरिः—भगवान् हरि; त्वा—तुमको; अद्य—अब; यः—जो; ते—तुम्हारा; शरणम्—रक्षक; ईप्सितम्—वांछित।

चूँकि तुम इतना अधिक अनर्गल प्रलाप कर रहे हो अतएव अब मैं तुम्हारे शरीर से तुम्हारा शिर छिन्न कर दूँगा। अब मैं देखूँगा कि तुम्हारा परमाराध्य ईश्वर तुम्हारी रक्षा किस तरह करता है। मैं उसे देखना चाहता हूँ।

तात्पर्य : असुरगण सदैव सोचते हैं कि भक्तों का ईश्वर काल्पनिक है। वे यह सोचते हैं कि ईश्वर है ही नहीं और ईश्वर के प्रति भक्ति की तथाकथित धार्मिक भावना मात्र निद्राजनक है। यह एक तरह

का व्यामोह है, जैसाकि एल० एस० डी० तथा अफीम से उत्पन्न होता है। जब प्रह्लाद महाराज हिरण्यकशिपु को कह रहे थे कि भगवान् सर्वत्र उपस्थित हैं, तो हिरण्यकशिपु को उस पर विश्वास नहीं हो रहा था। चूँकि एक आदर्शमय असुर होने के कारण हिरण्यकशिपु को विश्वास था कि कहीं ईश्वर नहीं है और कोई प्रह्लाद की रक्षा नहीं कर सकेगा, अतएव वह अपने पुत्र को मारने के लिए प्रोत्साहित हुआ। उसने इस विचार को चुनौती दी कि भक्त सदैव परमेश्वर द्वारा रक्षित है।

एवं दुरुक्तैर्मुहुरर्दयन्नुषा

सुतं महाभागवतं महासुरः ।

खड्गं प्रगृह्योत्पतितो वरासनात्

स्तम्भं तताडातिबलः स्वमुष्टिना ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; दुरुक्तैः—कटु वचनों से; मुहुः—निरन्तर; अर्दयन्—प्रताड़ित किया जाकर; रुषा—अनावश्यक क्रोध सहित; सुतम्—अपने पुत्र को; महा-भागवतम्—महान् भक्त; महा-असुरः—महान् असुर हिरण्यकशिपु ने; खड्गम्—तलवार; प्रगृह्य—ग्रहण करके; उत्पतितः—उठकर; वर-आसनात्—अपने अत्यन्त उच्च सिंहासन से; स्तम्भम्—ख भे को; तताड—प्रहार किया; अति-बलः—बलशाली; स्व-मुष्टिना—अपनी मुट्टी या घुँसे से।

अतिशय क्रोध के कारण अत्यन्त बलशाली हिरण्यकशिपु ने अपने महाभागवत पुत्र को अत्यन्त कटु वचन कहे और उसकी भर्त्सना की। उसे बारम्बार श्राप देते हुए हिरण्यकशिपु ने अपनी तलवार निकाली, अपने राजसी सिंहासन से उठ खड़ा होकर और अत्यन्त क्रोध के साथ ख भे पर मुष्टिका-प्रहार किया।

तदैव तस्मिन्निनदोऽतिभीषणो

बभूव येनाण्डकटाहमस्फुटत् ।

यं वै स्वधिष्योपगतं त्वजादयः

श्रुत्वा स्वधामात्ययमङ्ग मेनिरे ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

तदा—उसी समय; एव—ठीक; तस्मिन्—उस (ख भे) के भीतर; निनदः—ध्वनि; अति-भीषणः—अत्यन्त भयावर्नी; बभूव—हुई; येन—जिससे; अण्ड-कटाहम्—ब्रह्माण्ड आवरण (कोश); अस्फुटत्—चिटखता प्रतीत हुआ; यम्—जिसको; वै—निस्सन्देह; स्व-धिष्य-उपगतम्—अपने-अपने घर पहुँच कर; तु—लेकिन; अज-आदयः—ब्रह्माजी इत्यादि देवतागण; श्रुत्वा—सुनकर; स्व-धाम-अत्ययम्—अपने-अपने निवासों का ध्वंस; अङ्ग—हे राजा युधिष्ठिर; मेनिरे—सोचा।

तब उस ख भे से एक भयानक आवाज आई जिससे ब्रह्माण्ड का आवरण विदीर्ण होता प्रतीत हुआ। हे युधिष्ठिर, यह आवाज ब्रह्मा आदि देवताओं के निवासों तक पहुँच गई और जब देवताओं ने इसे सुना तो उन्होंने सोचा “ओह! अब हमारे लोकों का विनाश होने जा रहा है।”

तात्पर्य : जिस प्रकार हम वज्रपात की ध्वनि से कभी कभी अत्यधिक भयभीत हो उठते हैं और यह सोचने लगते हैं कि शायद हमारे घर विनष्ट हो जायेंगे उसी प्रकार ब्रह्मा आदि देवता हिरण्यकशिपु के समक्ष ख भे से उत्पन्न गर्जन सुनकर भयभीत हो उठे ।

स विक्रमन्पुत्रवधेप्सुरोजसा

निशाम्य निर्हादमपूर्वमद्भुतम् ।

अन्तःसभायां न ददर्श तत्पदं

वितत्रसुर्येन सुरारियूथपाः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

सः—वह (हिरण्यकशिपु); विक्रमन्—अपने शौर्य का प्रदर्शन करते हुए; पुत्र-वध-ईप्सुः—अपने ही पुत्र का वध करने का इच्छुक; ओजसा—अत्यन्त बलपूर्वक; निशाम्य—सुनकर; निर्हादम्—भयानक ध्वनि को; अपूर्वम्—पहले कभी न सुनी गई; अद्भुतम्—अत्यन्त अद्भुत; अन्तः-सभायाम्—सभा के भीतर; न—नहीं; ददर्श—देखा; तत्-पदम्—उस भयानक आवाज के स्रोत को; वितत्रसुः—भयभीत हुए; येन—जिस ध्वनि से; सुर-अरि-यूथ-पाः—असुरों के अन्य नेता (हिरण्यकशिपु ही नहीं)।

अपने पुत्र को मारने के इच्छुक हिरण्यकशिपु ने जो इस तरह अपना अद्वितीय शौर्य दिखला रहा था जब एक अद्भुत भीषण (घोर) ध्वनि सुनी जिसे इसके पूर्व उसने कभी नहीं सुना था। इसी ध्वनि को सुनकर अन्य असुरनायक भी भयभीत हुए। उस सभा में इस ध्वनि के उद्गम को कोई नहीं ढूँढ़ पाया।

तात्पर्य : भगवद्गीता (७.८) में कृष्ण यह कहकर अपनी व्याख्या करते हैं—

रसोऽमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशि सूर्ययोः ।

प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ॥

“हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! मैं ही जल का स्वाद, सूर्य तथा चन्द्रमा का प्रकाश, वैदिक मंत्रों का ॐ शब्द तथा आकाश एवं मनुष्य के पुरुषार्थ की ध्वनि हूँ।” यहाँ पर भगवान् ने आकाश में भीषण ध्वनि द्वारा (शब्दः खे) सर्वत्र अपनी उपस्थिति प्रकट की। अब हिरण्यकशिपु जैसे असुर भगवान् की परम नियंत्रक शक्ति का अनुभव कर सके और इस प्रकार हिरण्यकशिपु भयभीत हो गया। मनुष्य चाहे कितना बलशाली क्यों न हो, वह वज्रपात की ध्वनि से सदैव भयभीत होता है। इसी प्रकार हिरण्यकशिपु तथा उसके सारे संगी असुर उस ध्वनि के रूप में उपस्थित भगवान् की उपस्थिति से भयभीत थे, यद्यपि वे उस ध्वनि के उद्गम का पता नहीं लगा पाये।

सत्यं विधातुं निजभृत्यभाषितं

व्याप्तिं च भूतेष्वखिलेषु चात्मनः ।

अदृश्यतात्यद्भुतरूपमुद्ग्रहन्

स्तम्भे सभायां न मृगं न मानुषम् ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

सत्यम्—सच; विधातुम्—सिद्ध करने के लिए; निज-भृत्य-भाषितम्—अपने दास के ही शब्दों को (प्रह्लाद महाराज द्वारा कहे गये शब्द कि भगवान् सर्वव्यापी हैं); व्याप्तिम्—उपस्थिति; च—तथा; भूतेषु—जीवों तथा तत्त्वों के मध्य; अखिलेषु—समस्त; च—तथा; आत्मनः—अपना; अदृश्यत—दिखाई पड़ा; अति—अत्यन्त; अद्भुत—अद्भुत; रूपम्—रूप को; उद्ग्रहन्—धारण करके; स्तम्भे—ख भे में; सभायाम्—सभा के भीतर; न—नहीं; मृगम्—पशु; न—न तो; मानुषम्—मनुष्य ।

अपने दास प्रह्लाद महाराज के वचनों को सिद्ध करने के लिए कि वे सत्य हैं—अर्थात् यह सिद्ध करने के लिए कि भगवान् सर्वत्र उपस्थित हैं, यहाँ तक कि सभा भवन के ख भे के भीतर भी हैं—भगवान् श्री हरि ने अपना अभूतपूर्व अद्भुत रूप प्रकट किया। यह रूप न तो मनुष्य का था, न सिंह का। इस प्रकार भगवान् उस सभाकक्ष में अपने अद्भुत रूप में प्रकट हुए।

तात्पर्य : जब हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद महाराज से पूछा “तुम्हारा भगवान् कहाँ है? क्या वह इस ख भे में उपस्थित है?” तो प्रह्लाद महाराज ने निर्भीक होकर उत्तर दिया, “हाँ, मेरे भगवान् सर्वत्र उपस्थित हैं।” अतएव हिरण्यकशिपु को यह विश्वास दिलाने के लिए कि प्रह्लाद महाराज का कथन निर्भ्रान्त था, भगवान् उस ख भे से प्रकट हो गये। वे आधा सिंह तथा आधा मनुष्य के रूप में प्रकट हुए जिससे हिरण्यकशिपु यह नहीं जान पाया कि यह विराट दैव सिंह है या मनुष्य। प्रह्लाद के कथन की पुष्टि करके भगवान् ने सिद्ध कर दिया कि उनका भक्त कभी विनष्ट नहीं होता, जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है (*कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति*)। यद्यपि प्रह्लाद का असुर पिता उन्हें मार डालने की बार-बार धमकियाँ दे चुका था, किन्तु प्रह्लाद को विश्वास था कि वे मारे नहीं जा सकते, क्योंकि उनकी रक्षा करने वाले भगवान् हैं। ख भे से प्रकट होकर भगवान् ने मानो यह कहते हुए अपने भक्त को प्रोत्साहित किया हो “मत चिन्तित होओ। मैं यहाँ उपस्थित हूँ।” नृसिंह देव के रूप में प्रकट होकर भगवान् ने ब्रह्माजी के वचनों को भी रख लिया कि हिरण्यकशिपु का वध न तो किसी पशु के द्वारा होगा, न मनुष्य द्वारा। भगवान् ऐसे रूप में प्रकट हुए जो न तो पूरी तरह मनुष्य का, न सिंह का कहा जा सकता था।

स सत्त्वमेनं परितो विपश्यन्

स्तम्भस्य मध्यादनुनिर्जिहानम् ।
 नायं मृगो नापि नरो विचित्र-
 महो किमेतन्नृमृगेन्द्ररूपम् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

सः—वह (दैत्यराज हिरण्यकशिपु); सत्त्वम्—सजीव प्राणी को; एनम्—इस; परितः—चारों ओर; विपश्यन्—देखते हुए;
 स्तम्भस्य—ख भे के; मध्यात्—बीच से; अनुनिर्जिहानम्—निकल कर; न—नहीं; अयम्—यह; मृगः—पशु; न—नहीं;
 अपि—निस्सन्देह; नरः—मनुष्य; विचित्रम्—अत्यन्त अद्भुत; अहो—ओह; किम्—किया; एतत्—यह; नृ-मृग-इन्द्र-रूपम्—
 मनुष्य तथा पशुओं के राजा सिंह का रूप।

जब हिरण्यकशिपु उस ध्वनि का स्रोत ढूँढ़ने के लिए इधर-उधर देख रहा था तो उस ख भे से भगवान् का एक अद्भुत रूप प्रकट हुआ जो न तो मनुष्य का था और न सिंह का माना जाता था। हिरण्यकशिपु आश्चर्यचकित हुआ, “यह कैसा प्राणी है, जो आधा पुरुष तथा आधा सिंह है?”

तात्पर्य : असुर कभी भी परमेश्वर की असीम शक्ति का अनुमान नहीं लगा सकता। जैसाकि वेदों में कहा गया है—*परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी-ज्ञान बलक्रिया च*—भगवान् की विविध शक्तियाँ सदैव उनके ज्ञान के स्वतः प्राकट्य के रूप में कार्य करती हैं। असुर के लिए निस्सन्देह, यह आश्चर्यजनक बात है कि मनुष्य तथा सिंह के रूप संयुक्त हो सकते हैं, क्योंकि उसे भगवान् की अजेय शक्ति का कोई अनुभव नहीं रहता जिसके कारण अहं सर्वशक्तिमान कहा जाता है। असुरगण भगवान् की सर्वशक्तिमत्ता को नहीं जान सकते। वे सदैव भगवान् की तुलना अपने से करते हैं (*अवजानन्तिमां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्*)। ये मूढ़ अर्थात् धूर्त सोचते हैं कि कृष्ण एक सामान्य मनुष्य हैं, जो अन्य मनुष्यों के हित के लिए प्रकट होते हैं। *परं भावम् अजानन्तः*—मूर्ख, धूर्त तथा असुरगण भगवान् की परम शक्ति की अनुभूति नहीं कर पाते, किन्तु भगवान् सब कुछ कर सकते हैं। निस्सन्देह, वे जो भी चाहें कर सकते हैं। जब हिरण्यकशिपु को ब्रह्माजी से वर प्राप्त हुआ था तो वह सोच रहा था कि वह सुरक्षित है, क्योंकि उसे वर प्राप्त था कि वह न तो किसी पशु द्वारा मारा जा सकेगा, न मनुष्य द्वारा। उसने कभी सोचा भी नहीं था कि पशु तथा मनुष्य संयुक्त होकर उसे आश्चर्यचकित कर देंगे। भगवान् की सर्वशक्तिमत्ता का यही अर्थ है।

मीमांसमानस्य समुत्थितोऽग्रतो ।
 नृसिंहरूपस्तदलं भयानकम् ॥ १९ ॥

प्रतप्तचामीकरचण्डलोचनं
 स्फुरत्सटाकेशरजृम्भिताननम् ।
 करालदंष्ट्रं करवालचञ्चल
 क्षुरान्तजिह्वं भ्रुकुटीमुखोल्बणम् ॥ २० ॥
 स्तब्धोर्ध्वकर्णं गिरिकन्दराद्भुत-
 व्यात्तास्यनासं हनुभेदभीषणम् ।
 दिविस्पृशत्कायमदीर्घपीवर-
 ग्रीवोरुवक्षःस्थलमल्पमध्यमम् ॥ २१ ॥
 चन्द्रांशुगौरैश्छुरितं तनूरुहै-
 विष्वग्भुजानीकशतं नखायुधम् ।
 दुरासदं सर्वनिजेतरायुध-
 प्रवेकविद्रावितदैत्यदानवम् ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

मीमांसमानस्य— भगवान् के अद्भुत रूप के विषय में उधेड़-बुन करने वाले हिरण्यकशिपु के; समुत्थितः— प्रकट हुआ;
 अग्रतः— समक्ष; नृसिंह-रूपः— नृसिंह देव (आधा सिंह तथा आधा मनुष्य) के रूप; तत्— वह; अलम्— विलक्षण रीति से;
 भयानकम्— अत्यन्त भयावना; प्रतप्त— पिघला हुआ; चामीकर— सोना; चण्ड-लोचनम्— भयानक आँखों वाला; स्फुरत्—
 चमकाते हुए; सटा-केशर— अपनी गर्दन के बाल; जृम्भित-आननम्— मुँह फैलाये; कराल— भयानक; दंष्ट्रम्— दाँतों से युक्त;
 करवाल-चञ्चल— पैनी तलवार जैसी हिलती; क्षुर-अन्त— तथा छुरे के समान तेज; जिह्वम्— अपनी जीभ को; भ्रुकुटी-मुख—
 अपने क्रोध-पूर्ण मुख के कारण; उल्बणम्— डरावना; स्तब्ध— स्थिर; ऊर्ध्व— ऊपर की ओर फैले; कर्णम्— कान; गिरि-
 कन्दर— पर्वत की गुफाओं के सदृश; अद्भुत— अत्यन्त भयानक; व्यात्तास्य— मुँह फैलाये; नासम्— तथा नथुने; हनु-भेद-
 भीषणम्— जबड़े अलग होने से भय उत्पन्न करता; दिवि-स्पृशत्— आकाश को छूता हुआ; कायम्— शरीर; अदीर्घ— लघु;
 पीवर— मोटी; ग्रीव— गर्दन; उरु— चौड़ा; वक्षः-स्थलम्— सीना; अल्प— छोटा; मध्यमम्— शरीर का मध्य भाग; चन्द्र-अंशु—
 चन्द्रमा की किरणों की तरह; गौरैः— गौर वर्ण के; छुरितम्— आवृत; तनूरुहैः— बालों से; विष्वक्— सभी दिशाओं में; भुज—
 भुजाओं का; अनीक-शतम्— एक सौ पंक्तियों वाला; नख— नाखून; आयुधम्— घातक हथियार के रूप में; दुरासदम्— जीत
 पाना कठिन; सर्व— समस्त; निज— स्वयं; इतर— तथा अन्य; आयुध— हथियारों का; प्रवेक— सर्वश्रेष्ठ (हथियार) के प्रयोग
 द्वारा; विद्रावित— दौने लगा; दैत्य— असुरों; दानवम्— तथा धूर्तों (नास्तिकों) को।

हिरण्यकशिपु ने अपने समक्ष खड़े नृसिंह देव के रूप का निश्चय करने के लिए भगवान् के रूप को ध्यान से देखा। भगवान् का रूप पिघले सोने के सदृश था। उनकी क्रुद्ध आँखों के कारण जो पिघले स्वर्ण से मिलती थी वह रूप अत्यन्त भयानक लग रहा था; उनके चमकीले अयाल (गर्दन के बाल) उनके भयानक मुखमण्डल के आकार को फैला रहे थे; उनके दाँत मृत्यु-जैसे भयानक थे, उनकी उस्तरे जैसी तीक्ष्ण जीभ लड़ाई में तलवार के समान इधर-उधर चल रही थी; उनके कान खड़े तथा स्थिर थे और उनके नथुने तथा खुला मुख पर्वत की गुफा-जैसे लग रहे थे। उनके जबड़े फैले हुए थे जिससे भय उत्पन्न हो रहा था और उनका समूचा शरीर आसमान को छू रहा था। उनकी गर्दन अत्यन्त छोटी तथा मोटी थी; उनकी छाती चौड़ी थी तथा कमर पतली थी। उनके शरीर के रोएँ चन्द्रमा की किरणों के समान श्वेत लग रहे थे। उनकी

भुजाएं चारों दिशाओं में फैले सैनिकों की टुकड़ियों से मिलती जुलती थी, जब वे असुरों धूर्तों तथा नास्तिकों का अपने शंख, चक्र, गदा, कमल तथा अन्य प्राकृतिक अस्त्र-शस्त्रों से वध कर रहे थे।

प्रायेण मेऽयं हरिणोरुमायिना

वधः स्मृतोऽनेन समुद्यतेन किम् ।

एवं ब्रुवंस्त्वभ्यपतद्गदायुधो

नदन्नृसिंहं प्रति दैत्यकुञ्जरः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

प्रायेण—शायद; मे—मेरा; अयम्—यह; हरिणा—भगवान् द्वारा; ऊरु-मायिना—अत्यधिक योग शक्ति वाले; वधः—मृत्यु; स्मृतः—आयोजित; अनेन—इस; समुद्यतेन—प्रयास के साथ; किम्—क्या लाभ; एवम्—इस प्रकार; ब्रुवन्—मन ही मन कहा; तु—निस्सन्देह; अभ्यपतत्—आक्रमण किया; गदा-आयुधः—अपने गदा रूपी आयुध से युक्त; नदन्—जोर से गर्जना करते हुए; नृ-सिंहम्—आधा सिंह तथा आधा मनुष्य के रूप में प्रकट होने वाले भगवान्; प्रति—के प्रति; दैत्य-कुञ्जरः—हाथी के तुल्य असुर हिरण्यकशिपु ने।

हिरण्यकशिपु ने मन ही मन कहा : “अत्यधिक योग शक्ति वाले भगवान् विष्णु ने मेरा वध करने के लिए यह योजना बनाई है, किन्तु ऐसा प्रयास करने से क्या लाभ है? भला ऐसा कौन है, जो मुझसे युद्ध कर सकता है?” ऐसा सोचते हुए हाथी के समान हिरण्यकशिपु ने अपनी गदा उठाकर भगवान् पर आक्रमण कर दिया।

तात्पर्य : कभी कभी जंगल में सिंहों तथा हाथियों के मध्य युद्ध होता है। यहाँ पर भगवान् सिंह रूप में प्रकट हुए और हिरण्यकशिपु ने निडर हाथी की तरह उन पर आक्रमण कर दिया। सामान्यतः हाथी सिंह से हार जाता है अतएव इस श्लोक में दी गई उपमा युक्तियुक्त है।

अलक्षितोऽग्नौ पतितः पतङ्गमो

यथा नृसिंहौजसि सोऽसुरस्तदा ।

न तद्विचित्रं खलु सत्त्वधामनि

स्वतेजसा यो नु पुरापिबत्तमः ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

अलक्षितः—अदृश्य; अग्नौ—अग्नि में; पतितः—गिरा हुआ; पतङ्गमः—पतंगा; यथा—जिस तरह; नृसिंह—भगवान् नृसिंह देव का; ओजसि—तेज में; सः—वह; असुरः—हिरण्यकशिपु; तदा—उस समय; न—नहीं; तत्—वह; विचित्रम्—अद्भुत; खलु—निस्सन्देह; सत्त्व-धामनि—सतोगुणी भगवान् में; स्व-तेजसा—अपने तेज से; यः—जो भगवान्; नु—निस्सन्देह; पुरा—प्राचीन काल में; अपिबत्—निगल लिया; तमः—भौतिक सृष्टि के भीतर अंधकार।

जिस तरह एक बेचारा छोटा पतंगा बरबस अग्नि में गिरकर अदृश्य हो जाता है उसी तरह जब हिरण्यकशिपु ने तेजोमय भगवान् पर आक्रमण किया तो वह अदृश्य हो गया। यह आश्चर्यजनक नहीं है, क्योंकि भगवान् सदैव सतोगुण की स्थिति में रहते हैं। प्राचीन काल में सृष्टि के समय वे अंधकारपूर्ण ब्रह्माण्ड में प्रविष्ट हो गये थे और उसे उन्होंने अपने आध्यात्मिक तेज से प्रकाशित कर दिया था।

तात्पर्य : भगवान् सदैव शुद्ध सत्त्व में स्थित रहते हैं। यह भौतिक जगत सामान्यतः तमोगुण द्वारा नियंत्रित होता है किन्तु आध्यात्मिक जगत भगवान् तथा उनके तेज की उपस्थिति के कारण तमो, रजो या दूषित सतोगुण के द्वारा होने वाले समस्त कल्मष से सर्वथा रहित है। यद्यपि इस जगत में भी ब्राह्मणों के रूप में सतोगुण का रंचमात्र पाया जाता है किन्तु कभी-कभी ऐसे गुण रजो तथा तमो गुणों के प्राबल्य के कारण अदृश्य हो जाते हैं। किन्तु भगवान् सदैव दिव्यतः स्थिर रहते हैं, अतएव रजो तथा तमोगुण उनका स्पर्श भी नहीं कर पाते। जब भी भगवान् विद्यमान रहते हैं, तो तमोगुण के कारण कोई भी अज्ञान वहाँ टिक नहीं सकता। *चैतन्य-चरितामृत* (मध्य २२.३१) में कहा गया है—

कृष्ण—सूर्य-सम, माया हय अन्धकार।

याहाँ कृष्ण, ताहाँ नाहि मायार अधिकार ॥

“भगवान् प्रकाश हैं और अविद्या अंधकार है। जहाँ भगवान् रहते हैं वहाँ अविद्या नहीं रहती।” यह भौतिक जगत तमोगुण से और आध्यात्मिक जीवन के अज्ञान से पूर्ण है, किन्तु भक्तियोग से यह अज्ञान जाता रहता है। भगवान् का प्राकट्य इसलिए हुआ, क्योंकि प्रह्लाद महाराज ने भक्तियोग प्रदर्शित किया और ज्योंही भगवान् प्रकट हुए त्योंही हिरण्यकशिपु के रजो तथा तमोगुण का प्रभाव जाता रहा, क्योंकि भगवान् का शुद्ध सतोगुण या ब्रह्मतेज प्रधान हो गया। उस प्रखर तेज के समक्ष हिरण्यकशिपु अदृश्य हो गया, अर्थात् उसका प्रभाव नगण्य हो गया। शास्त्र में यह बताने के लिए कि भौतिक जगत का अंधकार किस प्रकार भाग जाता है उदाहरण प्राप्त है। जब ब्रह्मा गर्भोदकशायी विष्णु के उदर से निकले—कमल से उत्पन्न हुए तो उन्होंने देखा कि सब कुछ अंधकारमय है, किन्तु जब उन्हें भगवान् से ज्ञान प्राप्त हो गया तो सब कुछ स्पष्ट हो गया जिस तरह रात्रि से सूर्य प्रकाश में आने पर प्रत्येक वस्तु स्पष्ट दिखने लगती है। मुख्य बात तो यह है कि जब तक हम प्रकृति के गुणों में रहते हैं तब तक हम

सदैव अंधकार में होते हैं। यह अंधकार भगवान् की उपस्थिति के बिना दूर नहीं हो पाता जिस का आवाहन भक्तियोग विधि से किया जाता है। भक्तियोग से कल्मषविहीन दिव्य स्थिति उत्पन्न होती है।

ततोऽभिपद्यभ्यहनन्महासुरो
 रुषा नृसिंहं गदयोरुवेगया ।
 तं विक्रमन्तं सगदं गदाधरो
 महोरगं ताक्षर्यसुतो यथाग्रहीत् ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; अभिपद्य—आक्रमण करके; अभ्यहनत्—प्रहार किया; महा-असुरः—महान् असुर (हिरण्यकशिपु) ने; रुषा—क्रुद्ध होकर; नृसिंहम्—भगवान् नृसिंह देव पर; गदया—अपनी गदा से; उरु-वेगया—अत्यधिक बलपूर्वक; तम्—उसे (हिरण्यकशिपु को); विक्रमन्तम्—अपना पराक्रम दिखाते हुए; स-गदम्—उसकी गदा सहित; गदा-धरः—हाथ में गदा लिए भगवान् नृसिंह देव ने; महा-उरुगम्—विशाल सर्प को; ताक्षर्य-सुतः—ताक्षर्य पुत्र गरुड़; यथा—जिस तरह; अग्रहीत्—पकड़ ले।

तत्पश्चात् अत्यन्त क्रुद्ध उस महान् असुर हिरण्यकशिपु ने तेजी से नृसिंह देव पर अपनी गदा से आक्रमण कर दिया और उन्हें मारने लगा। किन्तु भगवान् नृसिंह देव ने उस महान् असुर को उसकी गदा समेत उसी तरह पकड़ लिया जिस तरह गरुड़ किसी साँप को पकड़ ले।

स तस्य हस्तोत्कलितस्तदासुरो
 विक्रीडतो यद्वदहिर्गुरुत्मतः ।
 असाध्वमन्यन्त हतौकसोऽमरा
 घनच्छदा भारत सर्वधिष्यपाः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

सः—वह (हिरण्यकशिपु); तस्य—उस दिव्य (भगवान् नृसिंह) के; हस्त—हाथों से; उत्कलितः—छूट गया; तदा—उस समय; असुरः—दैत्यराज हिरण्यकशिपु; विक्रीडतः—खेलते हुए; यद्वत्—के सदृश; अहिः—सर्प; गुरुत्मतः—गरुड़ का; असाधु—बुरा; अमन्यन्त—मान लिया; हत-ओकसः—जिनके धाम हिरण्यकशिपु ने छीन लिये थे; अमराः—देवगण; घन-च्छदाः—बादलों के पीछे स्थित; भारत—हे भरतपुत्र; सर्व-धिष्य-पाः—समस्त स्वर्गलोकों के शासक।

हे भरत के महान् पुत्र युधिष्ठिर, जब नृसिंह देव ने हिरण्यकशिपु को अपने हाथ से छूट जाने का अवसर दे दिया, जिस तरह से कभी-कभी गरुड़ साँप के साथ खिलवाड़ करते हुए उसे अपने मुँह से सरक जाने देता है, तो सारे देवताओं ने, जिनके निवास स्थान उनके हाथों से निकल चुके थे और जो असुर के भय से बादलों के पीछे छिपे थे, इस घटना को शुभ नहीं माना। निस्सन्देह, वे अत्यधिक विचलित थे।

तात्पर्य : जब हिरण्यकशिपु नृसिंह के चंगुल में था और मार डाला जाने वाला था तो भगवान् ने उसे अपने चंगुल से सरक जाने का एक अवसर दिया। देवताओं ने इस घटना को पसन्द नहीं किया,

क्योंकि वे हिरण्यकशिपु से अत्यधिक डरे हुए थे। वे जानते थे कि यदि किसी तरह हिरण्यकशिपु भगवान् के हाथों से छूट निकला और उसने यह देख लिया कि देवता उसकी मृत्यु की अत्यन्त हर्ष के साथ प्रतीक्षा कर रहे हैं, तो वह उनसे बदला लेगा। इसलिए वे अत्यधिक भयभीत थे।

तं मन्यमानो निजवीर्यशङ्कितं
यद्धस्तमुक्तो नृहरिं महासुरः ।
पुनस्तमासज्जत खड्गचर्मणी
प्रगृह्य वेगेन गतश्रमो मृधे ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको (नृसिंह देव को); मन्यमानः—सोचते हुए; निज-वीर्य-शङ्कितम्—अपने शौर्य से भयभीत; यत्—क्योंकि; हस्त-मुक्तः—भगवान् के चंगुल से मुक्त; नृ-हरिम्—भगवान् नृसिंह देव को; महा-असुरः—महान् असुर ने; पुनः—फिर से; तम्—उस पर; आसज्जत—आक्रमण किया; खड्ग-चर्मणी—अपनी ढाल-तलवार; प्रगृह्य—लेकर; वेगेन—अत्यन्त वेग के साथ; गत-श्रमः—थकान से मुक्त; मृधे—युद्ध भूमि में।

जब हिरण्यकशिपु नृसिंह देव के हाथों से छूट गया तो उसे यह मिथ्या विचार हुआ कि भगवान् उसके शौर्य से डर गये हैं। अतएव युद्ध से थोड़ा विश्राम करके उसने अपनी ढाल-तलवार निकाली और फिर से अत्यन्त बलपूर्वक भगवान् पर आक्रमण कर दिया।

तात्पर्य : जब पापी व्यक्ति भौतिक सुविधाएँ भोगता है, तो मूर्ख लोग कभी-कभी सोचते हैं “यह कैसी बात है कि यह पापी तो आनन्द कर रहा है, जबकि पुण्यात्मा कष्ट पा रहा है?” परमेश्वर की इच्छा से कभी-कभी पापी व्यक्ति को भौतिक जगत का भोग करने का अवसर प्रदान किया जाता है मानो वह प्रकृति के चंगुल में है ही नहीं। इस तरह वह मूर्ख बन जाता है। पापी व्यक्ति की जो प्रकृति के नियमों के विरुद्ध कार्य करता है दण्ड मिलना चाहिए, किन्तु कभी-कभी उसे उसी तरह क्रीड़ा करने का अवसर प्रदान किया जाता है, जिस तरह नृसिंह देव के चंगुल से मुक्त होने पर हिरण्यकशिपु को दिया गया। हिरण्यकशिपु को अन्ततः नृसिंह देव के हाथों मरना था, किन्तु कौतुक देखने के लिए ही उन्होंने उसे अपने हाथों से छूटने का अवसर प्रदान किया।

तं श्येनवेगं शतचन्द्रवर्त्मभिश्
चरन्तमच्छिद्रमुपर्यधो हरिः ।
कृत्वाट्टहासं खरमुत्स्वनोल्बणं
निमीलिताक्षं जगृहे महाजवः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको (हिरण्यकशिपु को); श्येन-वेगम्—बाज जैसी गति वाले; शत-चन्द्र-वर्त्मभिः—अपनी तलवार तथा एक सौ चन्द्रमा जैसे चिह्नों से युक्त ढाल को भाँजते हुए; चरन्तम्—गति करते हुए; अच्छिद्रम्—किसी तरह का स्थान छोड़े बिना; उपरि-अधः—ऊपर तथा नीचे; हरिः—भगवान्; कृत्वा—करते हुए; अट्ट-हासम्—जोर की हँसी; खरम्—अत्यन्त तीखी; उत्स्वन-उल्बणम्—इस तीव्र गर्जन से अत्यन्त भयभीत; निमीलित—बन्द; अक्षम्—आँखें; जगृहे—पकड़ लिया; महा-जवः—अत्यन्त शक्तिशाली भगवान् ने।

अट्टहास करते हुए अत्यन्त प्रबल तथा शक्तिशाली भगवान् नारायण ने हिरण्यकशिपु को पकड़ लिया जो किसी प्रकार का वार करने की संभावना छोड़े बिना अपनी तलवार-ढाल से अपनी रक्षा कर रहा था। वह कभी बाज की गति से आकाश में चला जाता और कभी पृथ्वी पर चला आता था। वह नृसिंहदेव की हँसी के भय से अपनी आँखें बन्द किये था।

विष्वक्स्फुरन्तं ग्रहणातुरं हरि-

व्यालो यथाखुं कुलिशाक्षतत्वचम् ।

द्वार्यरुमापत्य ददार लीलया

नखैर्यथाहिं गरुडो महाविषम् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

विष्वक्—चारों ओर; स्फुरन्तम्—अपने अंग हिलाते हुए; ग्रहण-आतुरम्—पकड़े जाने से पीड़ित; हरिः—भगवान्, नृसिंह देव ने; व्यालः—साँप; यथा—जिस तरह; आखुम्—चूहे को; कुलिश-अक्षत—जो इन्द्र के वज्र द्वारा भी न काटी जा सके; त्वचम्—त्वचा या खाल को; द्वारि—देहली पर; ऊरुम्—अपनी जाँघ पर; आपत्य—रखकर; ददार—फाड़ डाला; लीलया—सरलता से; नखैः—अपने नाखूनों से; यथा—जिस प्रकार; अहिम्—साँप को; गरुडः—गरुड़, विष्णु का वाहन; महा-विषम्—अत्यन्त विषधर।

जिस प्रकार कोई साँप किसी चूहे को या कोई गरुड़ किसी अत्यन्त विषैले सर्प को पकड़ ले उसी तरह भगवान् नृसिंहदेव ने उस हिरण्यकशिपु को पकड़ लिया जिसकी त्वचा में इन्द्र का वज्र भी नहीं घुस सकती था। ज्योंही पकड़े जाने पर वह अत्यन्त पीड़ित होकर अपने अंग इधर-उधर तथा चारों ओर हिलाने लगा त्योंही नृसिंहदेव ने उस असुर को अपनी गोद में रख लिया और अपनी जाँघों का सहारा देकर उस सभा भवन की देहली पर अपने हाथ के नाखूनों से सरलतापूर्वक उस असुर को छिन्न-भिन्न कर डाला।

तात्पर्य : हिरण्यकशिपु को ब्रह्माजी से वरदान प्राप्त था कि वह न तो स्थल पर मरेगा, न आकाश में। अतएव ब्रह्माजी के वचन को अक्षत बनाये रखने के लिए नृसिंहदेव ने हिरण्यकशिपु के शरीर को अपनी गोद में रख लिया जो न तो स्थल था न आकाश। उसे यह भी वरदान मिला था कि वह न तो रात्रि में मरेगा, न दिन में। अतएव ब्रह्मा के इस वचन को रखने के लिए भगवान् ने हिरण्यकशिपु को

सन्ध्या-समय मारा जो दिन का अवसान था तथा रात्रि का शुभारम्भ, किन्तु जो न तो दिन था न रात। उसने ब्रह्माजी से यह भी वर प्राप्त कर रखा था कि वह न तो किसी हथियार से मरे, न ही किसी मृत या जीवित व्यक्ति के द्वारा। अतएव ब्रह्मा के वचन को रखने के लिए भगवान् नृसिंहदेव ने हिरण्यकशिपु के शरीर में अपने नाखून घुसेड़ दिये जो न तो हथियार थे न ही मृत या जीवित थे। निस्सन्देह, नाखूनों को मृत कहा जा सकता है, किन्तु साथ ही उन्हें जीवित भी कहा जा सकता है। ब्रह्मा के समस्त वरदानों को अक्षत बनाये रखने के लिए भगवान् नृसिंहदेव ने उस महान् असुर हिरण्यकशिपु को अत्यन्त विषम स्थिति में किन्तु अत्यन्त सरलता से मार डाला।

संरम्भदुष्प्रेक्ष्यकराललोचनो

व्यात्ताननान्तं विलिहन्स्वजिह्वया ।

असृग्लवाक्कारुणकेशराननो

यथान्त्रमाली द्विपहत्यया हरिः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

संरम्भ—अत्यन्त क्रोध के कारण; दुष्प्रेक्ष्य—अत्यन्त कठिनाई से दिखने वाला; कराल—अत्यन्त भयावह; लोचनः—आँखें; व्यात्त—फैली हुई; आनन-अन्तम्—मुँह की कोरों को; विलिहन्—चाटते हुए; स्व-जिह्वया—अपनी जीभ से; असृक्-लव-रक्त के धब्बों से; आक्त—पुता हुआ; अरुण—लाल-लाल; केशर—गरदन के बाल; आननः—तथा मुख; यथा—जिस तरह; अन्त्र-माली—आँतों की माला से विभूषित; द्विप-हत्यया—किसी हाथी को मारने से; हरिः—सिंह।

भगवान् नृसिंहदेव के मुख तथा गरदन के बाल रक्त के छींटों से सने थे और क्रोध से पूर्ण होने के कारण उनकी भयानक आँखों की ओर देख पाना असम्भव था। वे अपने मुँह की कोरों को जीभ से चाट रहे थे तथा हिरण्यकशिपु के उदर से निकली आँतों की माला से सुशोभित थे। वे उस सिंह की भाँति प्रतीत हो रहे थे जिस ने अभी-अभी किसी हाथी को मारा हो।

तात्पर्य : भगवान् नृसिंहदेव के मुखमंडल के बाल रक्त के छींटों से लाल-लाल हो गये थे और वे अत्यन्त सुन्दर लग रहे थे। उन्होंने अपने नाखूनों से हिरण्यकशिपु के पेट को फाड़ डाला, उस असुर की आँतें निकाल लीं और उन्हें माला की तरह पहन लिया जिससे उनकी सुन्दरता बढ़ गई। इस प्रकार भगवान् अत्यन्त भयानक बन गये मानो कोई सिंह किसी हाथी से भिड़ा हो।

नखाङ्कु रोत्पाटितहत्सरोरुहं

विसृज्य तस्यानुचरानुदायुधान् ।

अहन्समस्तान्नाखशस्त्रपाणिभि-

दोर्दण्डयूथोऽनुपथान्सहस्रशः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

नख-अङ्कुर—नुकीले नाखूनों से; उत्पाटित—चीरा गया; हृत्-सरोरुहम्—कमल पुष्प जैसे हृदय को; विसृज्य—एक तरफ फेंक कर; तस्य—उसके; अनुचरान्—अनुयायियों (सैनिक तथा अंगरक्षकों) को; उदायुधान्—हथियार उठाते हुए; अहन्—मार डाला; समस्तान्—सभी; नख-शस्त्र-पाणिभिः—अपने नाखूनों तथा हाथ के अन्य हथियारों से; दोर्दण्ड-यूथः—असंख्य बाहुओं वाले; अनुपथान्—हिरण्यकशिपु के अनुचरों को; सहस्रशः—हजारों।

अनेकानेक भुजाओं वाले भगवान् ने सर्वप्रथम हिरण्यकशिपु का हृदय निकाल लिया और उसे एक ओर फेंक दिया। फिर वे असुर के सैनिकों की ओर मुड़े। ये सैनिक हजारों के झुंड में भगवान् से लड़ने आये थे और हाथों में हथियार उठाए थे। ये हिरण्यकशिपु के अत्यन्त स्वामिभक्त अनुचर थे, किन्तु नृसिंह देव ने उन्हें अपने नाखून की नोकों से ही मार डाला।

तात्पर्य : इस जगत की सृष्टि के समय से ही दो प्रकार के मनुष्य होते रहे हैं—देव तथा असुर। देवगण सदैव भगवान् के प्रति स्वामिभक्त होते हैं जबकि असुरगण नास्तिक होते हैं, जो भगवान् की श्रेष्ठता को ललकारते हैं। इस समय सारे विश्व में नास्तिकों का बोलबाला है। वे यह सिद्ध करने का प्रयास कर रहे हैं कि ईश्वर नहीं है और हर घटना भौतिक तत्त्वों के संयोग से घटित होती है। इस प्रकार यह जगत अधिकाधिक ईश्वरविहीन होता जा रहा है, फलस्वरूप सब कुछ अस्त-व्यस्त है। यदि ऐसी ही स्थिति बनी रही तो भगवान् निश्चित रूप से कार्यवाही करेंगे जैसाकि हिरण्यकशिपु के साथ किया। उन्होंने क्षण भर में हिरण्यकशिपु तथा उसके अनुयायियों को विनष्ट कर डाला। इसी तरह यदि यह ईश्वरविहीन सभ्यता चलती रही तो भगवान् की एक उँगुली के हिलाने से यह क्षण भर में नष्ट हो जाएगी। इसलिए असुरों को सावधान रहना चाहिए और अपनी ईश्वरविहीन सभ्यता में कटौती करनी चाहिए। उन्हें कृष्णभावनामृत आन्दोलन का लाभ उठाना चाहिए और भगवान् के प्रति आज्ञाकारी बनना चाहिए, अन्यथा विनाश निश्चित है। जिस प्रकार हिरण्यकशिपु का विनाश क्षण भर में हो गया उसी प्रकार ईश्वरविहीन सभ्यता किसी भी क्षण नष्ट हो सकती है।

सटावधूता जलदाः परापतन्

ग्रहाश्च तद्दृष्टिविमुष्टरोचिषः ।

अम्भोधयः श्वासहता विचुक्षुभु-

निर्हादभीता दिगिभा विचुकुशुः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

सटा—नृसिंह देव की जटा से; अवधूता:—हिले हुए; जलदा:—बादल; परापतन्—बिखरे हुए; ग्रहा:—चमकीले ग्रह; च—
तथा; तत्-दृष्टि—पैनी दृष्टि से; विमुष्ट—निकाल ली गई; रोचिष:—जिसका तेज; अम्भोधय:—समुद्रों का जल; श्वास-हता:—
नृसिंह देव के श्वास से प्रताड़ित; विचुक्षुभु:—क्षुब्ध हो उठा; निर्हाद-भीता:—नृसिंह देव की गर्जना से भयभीत; दिगिभा:—
दिशाओं की रखवाली करने वाले सारे हाथी; विचुकुशु:—चिगघाड़ उठे।

नृसिंह देव के सिर के बालों से बादल हिलकर इधर-उधर बिखर गये। उनकी जलती आँखों से आकाश के नक्षत्रों का तेज मंद पड़ गया और उनके श्वास से समुद्र क्षुब्ध हो उठे। उनकी गर्जना से संसार के सारे हाथी भय से चिगघाड़ने लगे।

तात्पर्य : जैसाकि भगवान् ने भगवद्गीता (१०.४१) में कहा है—

यद् यद् विभूतिमत् सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।

तद् तद् एवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम् ॥

“तुम जान लो कि समस्त सुन्दर गौरवशाली तथा शक्तिशाली सृष्टि मेरे तेज के एक स्फुलिंग से ही प्रकट होती है।” आकाश में ग्रहों तथा नक्षत्रों का प्रकाश भगवान् के तेज का आंशिक प्राकट्य है। विभिन्न जीवों में अनेक अद्भुत गुण पाये जाते हैं, किन्तु जितनी भी अद्वितीय वस्तुएँ पाई जाती हैं, वे भगवान् के तेजस् की अंश मात्र हैं। समुद्रों की उत्ताल तरंगें तथा भगवान् की सृष्टि के अनेक आश्चर्य उस समय नगण्य बन जाते हैं जब वे अपने विशेष रूप में इस जगत में अवतरित होते हैं। उनके साकार सर्वविजयी दिव्य गुणों की तुलना में सारी वस्तुएँ तुच्छ हैं।

द्यौस्तत्सटोत्क्षिप्तविमानसङ्कुला

प्रोत्सर्पत क्ष्मा च पदाभिपीडिता ।

शैलाः समुत्पेतुरमुष्य रंहसा

तत्तेजसा खं ककुभो न रेजिरे ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

द्यौः—बाह्य आकाश; तत्-सटा—उनके बालों से; उत्क्षिप्त—बाहर फेंका हुआ; विमान-सङ्कुला—विमानों से पूरित;
प्रोत्सर्पत—स्थान से सरक गया; क्ष्मा—पृथ्वी; च—भी; पद-अभिपीडिता—भगवान् के चरणकमलों के गुरु भार से पीड़ित;
शैलाः—पर्वत; समुत्पेतुः—ऊपर उठ गया; अमुष्य—उस (भगवान्) के; रंहसा—असह्य बल से; तत्-तेजसा—उसके तेज से;
खम्—आकाश; ककुभः—दसों दिशाएँ; न रेजिरे—नहीं चमकीं।

नृसिंह देव के सिर के बालों से वायुयान (विमान) बाह्य आकाश तथा उच्च लोकों में जा गिरे। भगवान् के चरणकमलों के दबाव से पृथ्वी अपनी स्थिति से छिटकती प्रतीत हुई और उनके असह्य बल से सारे पर्वत ऊपर उछल गये। भगवान् के शारीरिक तेज से आकाश तथा समस्त दिशाओं का प्राकृतिक प्रकाश घट गया।

तात्पर्य : इस श्लोक से पता चलता है कि बहुत समय पहले आकाश में विमान उड़ा करते थे। श्रीमद्भागवत की रचना पाँच हजार वर्ष पूर्व हुई और इस श्लोक के कथन से सिद्ध होता है कि उस समय उच्चलोकों में तथा अधोलोकों में भी अत्यन्त विकसित सभ्यता विद्यमान थी। आधुनिक विज्ञानी तथा दार्शनिक मूर्खतावश यह बताते हैं कि तीन हजार वर्ष पूर्व कोई सभ्यता न थी, किन्तु इस श्लोक के कथन से ऐसे अटपटे निर्णय निरस्त हो जाते हैं। वैदिक सभ्यता लाखों वर्ष पूर्व विद्यमान थी। वह इस ब्रह्माण्ड की सृष्टि के समय से ही विद्यमान थी और उसमें सारी आधुनिक सुविधाएँ तथा इससे भी अधिक व्यवस्थाएँ प्राप्त थीं।

ततः सभायामुपविष्टमुत्तमे

नृपासने सम्भृततेजसं विभुम् ।

अलक्षितद्वैरथमत्यमर्षणं

प्रचण्डवक्त्रं न बभाज कश्चन ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; सभायाम्—सभाभवन में; उपविष्टम्—बैठे हुए; उत्तमे—श्रेष्ठ; नृप-आसने—सिंहासन पर जिस पर हिरण्यकशिपु बैठा था; सम्भृत-तेजसम्—पूर्ण तेजोमय; विभुम्—परमेश्वर को; अलक्षित-द्वैरथम्—जिनका प्रतिद्वन्द्वी या शत्रु दिख नहीं रहा था; अति—अत्यन्त; अमर्षणम्—(अपने क्रोध के कारण) भयानक; प्रचण्ड—भयंकर; वक्त्रम्—मुखमंडल; न—नहीं; बभाज—पूजे; कश्चन—कोई।

अपना पूर्ण तेज तथा भयंकर मुखमंडल दिखलाते हुए नृसिंह देव अत्यन्त क्रुद्ध होने तथा अपने बल एवं ऐश्वर्य का सामना करने वाले किसी को न पाकर सभा भवन में राजा के श्रेष्ठतम सिंहासन पर जा बैठे। भय तथा आज्ञाकारिता के कारण किसी में साहस न हुआ कि सामने आकर भगवान् की सेवा करे।

तात्पर्य : जब हिरण्यकशिपु के सिंहासन पर भगवान् बैठ गये तो किसी ने विरोध नहीं किया, यहाँ तक कि हिरण्यकशिपु की ओर से कोई शत्रु भगवान् से लड़ने नहीं आया। इसका अर्थ है कि असुरों ने भगवान् की श्रेष्ठता तुरन्त स्वीकार कर ली। दूसरी बात यह है कि यद्यपि हिरण्यकशिपु भगवान् को अपना कट्टर शत्रु मानता था, किन्तु वैकुण्ठ में वह उनका अत्यन्त आज्ञाकारी दास था, अतएव हिरण्यकशिपु द्वारा इतने श्रम से प्राप्त किये गये सिंहासन पर भगवान् बैठने से तनिक भी हिचके नहीं। इस प्रसंग में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं कि कभी-कभी बड़े-बड़े सन्त तथा ऋषि वैदिक मंत्रों तथा तंत्रों के द्वारा भगवान् को महत्त्वपूर्ण आसन प्रदान करते हैं, किन्तु तो भी भगवान् उन आसनों

पर नहीं विराजते। चूँकि हिरण्यकशिपु पहले वैकुण्ठ-द्वार का रक्षक जय के रूप में था और यद्यपि वह ब्राह्मणों के शाप से पतित होकर असुर बना था और यद्यपि हिरण्यकशिपु के रूप में उसने भगवान् को कभी कोई वस्तु अर्पित नहीं की थी तो भी भगवान् अपने भक्त तथा दास के प्रति इतने वत्सल थे कि उन्होंने हिरण्यकशिपु द्वारा स्थापित सिंहासन पर प्रसन्नतापूर्वक आसन ग्रहण किया। इस प्रसंग में यह समझ लेना होगा कि भक्त अपने जीवन की किसी भी परिस्थिति में भाग्यशाली होता है।

निशाम्य लोकत्रयमस्तकञ्चरं

तमादिदैत्यं हरिणा हतं मृधे ।

प्रहर्षवेगोत्कलितानना मुहुः

प्रसूनवर्षैर्वृषुः सुरस्त्रियः ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

निशाम्य—सुनकर; लोक-त्रय—तीनों लोकों का; मस्तक-ञ्चरम्—सिर दर्द; तम्—उसको; आदि—मूल; दैत्यम्—असुर को; हरिणा—भगवान् द्वारा; हतम्—मारा गया; मृधे—युद्ध में; प्रहर्ष-वेग—प्रसन्नता के मारे; उत्कलित-आनना:—खिले हुए चेहरों वाली; मुहुः—पुनः पुनः; प्रसून-वर्षैः—फूलों की वर्षा से; वृषुः—वर्षा की; सुर-स्त्रियः—देवताओं की स्त्रियों ने।

हिरण्यकशिपु तीनों लोकों का सिर दर्द बना हुआ था। अतएव जब स्वर्गलोक में देवताओं की पत्नियों ने देखा कि इस महान् असुर का वध भगवान् के हाथों से हो गया है, तो उनके चेहरे प्रसन्नता के मारे खिल उठे। देवताओं की स्त्रियों ने स्वर्ग से भगवान् नृसिंह देव पर पुनः पुनः फूलों की वर्षा की।

तदा विमानावलिभिर्नभस्तलं

दिदक्षतां सङ्कुलमास नाकिनाम् ।

सुरानका दुन्दुभयोऽथ जघ्निरे

गन्धर्वमुख्या ननृतुर्जगुः स्त्रियः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

तदा—उस समय; विमान-आवलिभिः—विभिन्न प्रकार के विमानों से; नभस्तलम्—आकाश को; दिदक्षताम्—देखने के इच्छुक; सङ्कुलम्—समूहबद्ध; आस—हो गया; नाकिनाम्—देवताओं के; सुर-आनकाः—देवताओं के ढोल; दुन्दुभयः—दुन्दुभियाँ; अथ—तथा; जघ्निरे—बजायी गईं; गन्धर्व-मुख्याः—गन्धर्वों के प्रमुख; ननृतुः—नाचने लगीं; जगुः—गाने लगे; स्त्रियः—स्वर्ग की स्त्रियाँ।

उस समय भगवान् नारायण का दर्शन करने के इच्छुक देवताओं के विमानों से आकाश पट गया। देवतागण ढोल तथा नगाड़े बजाने लगे जिन्हें सुनकर देव लोक की स्त्रियाँ नाचने लगीं और गन्धर्वों के मुखिया मधुर गान गाने लगे।

तत्रोपव्रज्य विबुधा ब्रह्मेन्द्रगिरिशादयः ।
 ऋषयः पितरः सिद्धा विद्याधरमहोरगाः ।
 मनवः प्रजानां पतयो गन्धर्वाप्सरचारणाः ॥ ३७ ॥
 यक्षाः किम्पुरुषास्तात वेतालाः सहकिन्नराः ।
 ते विष्णुपार्षदाः सर्वे सुनन्दकुमुदादयः ॥ ३८ ॥
 मूर्ध्नि बद्धाञ्जलिपुटा आसीनं तीव्रतेजसम् ।
 ईडिरे नरशार्दुलं नातिदूरचराः पृथक् ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ (आकाश में); उपव्रज्य—(अपने-अपने विमानों से) आकर; विबुधा:—सारे देवता; ब्रह्म-इन्द्र-गिरिश-आदयः—ब्रह्मा, इन्द्र, शिव आदि; ऋषयः—ऋषिगण; पितरः—पितृलोक के निवासी; सिद्धा:—सिद्धलोक के निवासी; विद्याधर—विद्याधर लोक के निवासी; महा-उरगा:—सर्प लोक के वासी; मनवः—मनुष्यगण; प्रजानाम्—(विभिन्न लोक के) जीवों के; पतयः—प्रमुख; गन्धर्व—गन्धर्व लोक के वासी; अप्सर—अप्सरा लोक के वासी; चारणाः—चारण लोक के वासी; यक्षाः—यक्षगण; किम्पुरुषाः—किम्पुरुषगण; तात—हे प्रिय; वेतालाः—वेतालगण; सह-किन्नराः—किन्नरों समेत; ते—वे; विष्णु-पार्षदाः—(विष्णु लोक में) भगवान् विष्णु के निजी सहयोगी; सर्वे—सभी; सुनन्द-कुमुद-आदयः—सुनन्द तथा कुमुद आदि; मूर्ध्नि—अपने सिरों पर; बद्ध-अञ्जलि-पुटाः—हाथ जोड़े; आसीनम्—सिंहासन पर बैठे हुए; तीव्र-तेजसम्—अपना आध्यात्मिक तेज बिखेरते हुए; ईडिरे—सादर पूजा की; नर-शार्दुलम्—आधा मनुष्य तथा आधा सिंह के रूप में प्रकट होने वाले भगवान् को; न अति-दूरचराः—पास आकर; पृथक्—अलग-अलग।

हे राजा युधिष्ठिर, तब सारे देवता भगवान् के निकट आ गये। उनमें ब्रह्माजी, इन्द्र तथा शिव जी प्रमुख थे और उनके साथ बड़े-बड़े साधु पुरुष एवं पितृलोक, सिद्धलोक, विद्याधर लोक तथा नागलोक के निवासी भी थे। वहीं सारे मनु तथा अन्य लोकों के प्रजापति भी पहुँच गये। अप्सराओं के साथ-साथ गन्धर्व, चारण, यक्ष, किन्नर, बेताल, किम्पुरुष लोक के वासी तथा विष्णु के पार्षद सुनन्द एवं कुमुद आदि भी पहुँचे। ये सभी भगवान् के निकट आये जो अपने तीव्र प्रकाश से चमक रहे थे। इन सबों ने अपने-अपने सिरों के ऊपर हाथ जोड़कर नमस्कार किया और स्तुतियाँ कीं।

श्रीब्रह्मोवाच

नतोऽस्म्यनन्ताय दुरन्तशक्तये
 विचित्रवीर्याय पवित्रकर्मणे ।
 विश्वस्य सर्गस्थितिसंयमान्गुणैः
 स्वलीलया सन्धतेऽव्ययात्मने ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

श्री-ब्रह्मा उवाच—ब्रह्माजी ने कहा; नतः—नतमस्तक; अस्मि—हूँ; अनन्ताय—अनन्त भगवान् को; दुरन्त—जिसका अन्त ढूँढ़ पाना कठिन है; शक्तये—विभिन्न शक्तियों से युक्त; विचित्र-वीर्याय—नाना प्रकार के पराक्रम से युक्त; पवित्र-कर्मणे—जिनके कर्म का फल नहीं होता (चाहे बुरा ही कर्म क्यों न करें, वे भौतिक गुण से दूषित नहीं होते); विश्वस्य—विश्व की; सर्ग—सृष्टि;

स्थिति—पालन; संयमान्—तथा संहार; गुणैः—गुणों से; स्व-लीलया—आसानी से; सन्दधते—सम्पन्न करता है; अव्यय-आत्मने—जिनके व्यक्तित्व का ह्रास नहीं होता।

ब्रह्माजी ने प्रार्थना की: हे प्रभु, आप अनन्त हैं और आपकी शक्ति का कोई अन्त नहीं है। कोई भी आपके पराक्रम तथा अद्भुत प्रभाव का अनुमान नहीं लगा सकता, क्योंकि आपके कर्म माया द्वारा दूषित नहीं होते। आप भौतिक गुणों से सहज ही ब्रह्माण्ड का सृजन, पालन तथा संहार करते हैं लेकिन तो भी आप अव्यय बने रहते हैं। अतएव मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : भगवान् के कार्यकलाप सदैव अद्भुत होते हैं। यद्यपि जय तथा विजय उनके पार्षद और विश्वस्त मित्र थे, किन्तु उन्हें शापवश असुरों का शरीर धारण करना पड़ा। यही नहीं, ऐसे ही एक असुर-परिवार में प्रह्लाद महाराज को महाभावगत का आचरण प्रदर्शित करने के लिए जन्म धारण करना पड़ा और तब भगवान् को उसी असुर का वध करने के लिए नृसिंह देव का रूप धारण करना पड़ा जिसने भगवान् की इच्छा से असुर-कुल में जन्म लिया था। अतएव ऐसा कौन होगा जो भगवान् के दिव्य कार्यकलापों को समझ सके? उनके कार्यकलापों की कौन कहे, उनके दासों के कार्यकलापों तक को समझना कठिन है। श्रीचैतन्य-चरितामृत (मध्य २३.३९) में कहा गया है तारँ वाक्य, क्रिया, मुद्रा विज्ञेह ना बुझय—भगवान् के दासों के कार्यकलापों को कोई नहीं जान सकता। अतएव भगवान् के कार्यकलापों के विषय में क्या कहा जा सकता है? यह कौन समझ सकता है कि कृष्ण किस तरह सम्पूर्ण जगत को लाभान्वित कर रहे हैं। भगवान् को दुरन्त शक्ति कहकर सम्बोधित किया गया है, क्योंकि कोई भी व्यक्ति उनकी शक्तियों को तथा उनकी कार्यविधि को नहीं समझ सकता।

श्रीरुद्र उवाच

कोपकालो युगान्तस्ते हतोऽयमसुरोऽल्पकः ।
तत्सुतं पाह्युपसृतं भक्तं ते भक्तवत्सल ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

श्री-रुद्र: उवाच—शिवजी ने स्तुति की; कोप-कालः—(ब्रह्माण्ड का संहार करने के लिए) आपके क्रोध का उचित समय; युग-अन्तः—कल्प का अन्त; ते—तुम्हारे द्वारा; हतः—मारा गया; अयम्—यह; असुरः—महान् दैत्य; अल्पकः—नगण्य; तत्-सुतम्—उसके पुत्र (प्रह्लाद महाराज) की; पाहि—रक्षा करो; उपसृतम्—शरणागत होकर पास ही खड़ा; भक्तम्—भक्त; ते—तुम्हारा; भक्त-वत्सल—हे भक्तों के प्रति अत्यन्त वत्सल प्रभु!

शिव जी ने कहा : कल्प का अन्त ही आपके क्रोध का समय होता है। अब जबकि यह नगण्य असुर हिरण्यकशिपु मारा जा चुका है, हे भक्तवत्सल प्रभु, कृपा करके उसके पुत्र प्रह्लाद महाराज की रक्षा करें जो आपके निकट पूर्ण शरणागत भक्त के रूप में खड़ा हुआ है।

तात्पर्य : भगवान् इस भौतिक जगत के स्रष्टा हैं। सृष्टि में तीन प्रक्रम होते हैं—सृजन, पालन तथा अन्त में संहार। संहार के समय, प्रत्येक युग के अन्त में भगवान् क्रुद्ध होते हैं और यह क्रुद्ध होने का कार्य शिवजी द्वारा सम्पन्न होता है, अतएव वे रुद्र कहलाते हैं। जब भगवान् हिरण्यकशिपु को मारने के लिए अत्यन्त क्रुद्ध हुए तो सभी लोग उनके रुख को देखकर भयभीत थे, लेकिन शिवजी भयभीत नहीं हुए, क्योंकि उन्हें ज्ञात था कि भगवान् का क्रोध भी एक लीला है। उन्हें पता था कि उन्हें ही भगवान् के क्रोध की भूमिका निभानी पड़ेगी। काल का अर्थ है शिवजी (भैरव) तथा कोप का अर्थ है भगवान् का क्रोध। इन दोनों के संयोग से निर्मित कोप-काल का प्रयोग प्रत्येक कल्प के अन्त के लिए हुआ है। भगवान् भले ही अत्यन्त क्रुद्ध क्यों न प्रतीत हों, वास्तव में वे अपने भक्तों के प्रति सदा वत्सल रहते हैं। चूँकि वे अव्ययात्मा हैं अर्थात् वे कभी च्युत नहीं होते, अतएव वे क्रुद्ध रहने पर भी भक्तों के प्रति वत्सल बने रहते हैं। अतएव शिवजी ने भगवान् को याद दिलाया कि वे प्रह्लाद महाराज के प्रति पितृतुल्य वत्सल बनें जो उनकी बगल में विनीत शरणागत भक्त की तरह खड़े थे।

श्रीइन्द्र उवाच

प्रत्यानीताः परम भवता त्रायता नः स्वभागा

दैत्याक्रान्तं हृदयकमलं तद्गृहं प्रत्यबोधि ।

कालग्रस्तं कियदिदमहो नाथ शुश्रूषतां ते

मुक्तिस्तेषां न हि बहुमता नारसिंहापरैः किम् ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

श्री-इन्द्रः उवाच—स्वर्ग के राजा इन्द्र ने कहा; प्रत्यानीताः—लौटना है; परम—हे परम; भवता—आपके द्वारा; त्रायता—रक्षा किये जाकर; नः—हम; स्व-भागाः—यज्ञ का अंश; दैत्य-आक्रान्तम्—दैत्य से पीड़ित; हृदय-कमलम्—अपने कमल रूपी हृदय; तत्-गृहम्—जो आपका वास्तविक धाम है; प्रत्यबोधि—प्रकाशित किया जा चुका; काल-ग्रस्तम्—समय द्वारा कवलित; कियत्—नगण्य; इदम्—यह (संसार); अहो—ओह; नाथ—हे स्वामी; शुश्रूषताम्—सेवा में लगे रहने वालों के लिए; ते—तुम्हारा; मुक्तिः—भवबन्धन से मोक्ष; तेषाम्—उनका (शुद्ध भक्तों का); न—नहीं; हि—निस्सन्देह; बहुमता—बहुत आवश्यक समझा; नार-सिंह—हे नृसिंह देव; अपरैः किम्—अन्य किसी सम्पत्ति से क्या लाभ?.

राजा इन्द्र ने कहा : हे परमेश्वर, आप हमारे उद्धारक तथा रक्षक हैं। आपने दैत्य से हमारे वास्तविक यज्ञ भाग जो वास्तव में आपके हैं लौटाये हैं। चूँकि असुरराज हिरण्यकशिपु अत्यन्त

भयानक था, अतः आपके स्थायी निवास हमारे हृदय उसके द्वारा विजित हो चुके थे। अब आपकी उपस्थिति से हमारे हृदयों से निराशा तथा अंधकार दूर हो गये हैं। हे प्रभु, जो लोग आपकी सेवा में सदैव लगे रहते हैं उनके लिए सारा भौतिक ऐश्वर्य तुच्छ है, क्योंकि आपकी सेवा मोक्ष से भी बढ़कर है। वे जब मोक्ष की भी परवाह नहीं करते तो काम, अर्थ तथा धर्म के विषय में क्या कहा जाये ?

तात्पर्य : इस भौतिक जगत में दो प्रकार के लोग हैं—देवतागण तथा असुर। यद्यपि देवता भी भौतिक भोग के प्रति आसक्त होते हैं, लेकिन वे होते हैं भगवान् के भक्त जो वैदिक आदेशों के अनुसार कर्म करते हैं। हिरण्यकशिपु के राज्य काल में प्रत्येक व्यक्ति को वैदिक सभ्यता के नित्य कर्तव्यों को निबाहने में अवरोध होता था। जब हिरण्यकशिपु मार डाला गया तो देवताओं को अपने सामान्य जीवन यापन में विशेष उसासी हुई, क्योंकि वे हिरण्यकशिपु द्वारा विचलित रहते थे।

चूँकि कलियुग में सरकार असुरों से पूर्ण रहती है, अतएव भक्तों का जीवन संकट में रहता है। वे यज्ञ नहीं कर सकते, अतएव भगवान् विष्णु की पूजा के लिए किये जाने वाले यज्ञ का प्रसाद ग्रहण नहीं कर सकते। देवताओं के हृदयों में सदैव असुरों का भय समाया रहता है, अतएव वे भगवान् के विषय में सोच भी नहीं पाते। देवताओं का कार्य है अपने हृदयों में भगवान् का सदैव चिन्तन करना। भगवान् भगवद्गीता (६.४७) में कहते हैं—

योगिनाम् अपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।

श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥

“समस्त योगियों में जो दिव्य प्रेमाभक्ति से मेरी पूजा करते हुए सदैव श्रद्धापूर्वक मुझमें निवास करता है, वह योग में मुझसे घनिष्ठतापूर्वक बँध जाता है और सर्वोच्च होता है।” देवतागण पूर्ण योगी बनने के लिए सदैव भगवान् के ध्यान में लीन रहते हैं, लेकिन असुरों की उपस्थिति के कारण उनके हृदय सदैव असुरों के कार्यकलापों से भरे रहते हैं। इस तरह उनके हृदय, यद्यपि परमेश्वर के वास के निमित्त हैं, किन्तु व्यावहारिक रूप से वे शत्रुओं द्वारा आच्छन्न रहते हैं। अतएव जब हिरण्यकशिपु मर गया तो देवताओं को उसासी हुई, क्योंकि अब वे भगवान् के विषय में आसानी से सोच सकेंगे। अब उन्हें यज्ञ-फल प्राप्त हो सकेगा और इस भौतिक जगत में भी सुखी बन सकेंगे।

श्रीऋषय ऊचुः

त्वं नस्तपः परममात्थ यदात्मतेजो
येनेदमादिपुरुषात्मगतं ससर्व्वर्था ।
तद्विप्रलुप्तममुनाद्य शरण्यपाल
रक्षागृहीतवपुषा पुनरन्वमंस्थाः ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

श्री-ऋषयः ऊचुः—ऋषियों ने कहा; त्वम्—तुम; नः—हमारी; तपः—तपस्या; परमम्—सर्वोच्च; आत्थ—उपदेश दिया; यत्—जो; आत्म-तेजः—आपकी आध्यात्मिक शक्ति; येन—जिससे; इदम्—यह (भौतिक जगत); आदि-पुरुष—हे परम आदि भगवान्; आत्म-गतम्—आपके भीतर लीन; ससर्व्वर्था—(आपने) उत्पन्न किया; तत्—तप की वह विधि; विप्रलुप्तम्—चुराई गई; अमुना—उस दैत्य (हिरण्यकशिपु) द्वारा; अद्य—अब; शरण्य-पाल—शरणागत के परम पालक; रक्षा-गृहीत-वपुषा—आपके शरीर द्वारा जिसे आप रक्षा प्रदान करने के लिए धारण करते हैं; पुनः—फिर; अन्वमंस्थाः—आपने अनुमोदित किया है।

सारे उपस्थित ऋषियों ने उनकी इस प्रकार स्तुति की: हे प्रभु, हे शरणागत पालक, हे आदि पुरुष, आपने हमें पहले जिस तपस्या की विधि का उपदेश दिया है, वह आपकी ही आध्यात्मिक शक्ति है। आप तपस्या से ही भौतिक जगत का सृजन करते हैं। यह तपस्या आपमें सुप्त रहती है। इस दैत्य ने अपने कार्यकलापों से इसी तपस्या को रोक सा रखा था, किन्तु अब हम लोगों की रक्षा करने के लिए आप जिस नृसिंह देव के रूप में प्रकट हुए हैं उससे तथा इस असुर को मारने से तपस्या की विधि का फिर से अनुमोदन हुआ है।

तात्पर्य : सारे जीव चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करते हुए आत्म-साक्षात्कार का अवसर मनुष्य रूप में प्राप्त करते हैं और तब धीरे-धीरे देवता, किन्नर तथा चारण के पद को पाते हैं जिसका वर्णन आगे किया जाएगा। मनुष्य जीवन से ऊपर सभी उच्च स्तरों पर मुख्य कर्तव्य तपस्या है। जैसाकि ऋषभदेव ने अपने पुत्रों को उपदेश दिया था—*तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं शुद्ध्येत्*। अपने भौतिक जीवन को सुधारने के लिए तपस्या परमावश्यक है, किन्तु जब सामान्य लोग असुर के अधीन हो जाते ह, या आसुरी शासन के नियंत्रण में आ जाते हैं, तो वे इस प्रक्रिया को आगे भूल जाते हैं और क्रमशः आसुरी बन जाते हैं। अतएव सारे ऋषि जो सामान्यतया तपस्या में लगे थे नृसिंह देव द्वारा हिरण्यकशिपु के मारे जाने पर चिन्तामुक्त हो गये। उन्होंने अनुभव किया कि भगवान् द्वारा मानव जीवन सम्बन्धी मूल उपदेश की—कि यह आत्म-साक्षात्कार हेतु तपस्या करने के लिए है—पुनः पुष्टि की गई जब उन्होंने हिरण्यकशिपु का वध कर दिया।

श्रीपितर ऊचुः

श्राद्धानि नोऽधिबुभुजे प्रसभं तनूजै-

दत्तानि तीर्थसमयेऽप्यपिबत्तिलाम्बु ।

तस्योदरान्नखविदीर्णवपाद्य आर्च्छत्

तस्मै नमो नृहरयेऽखिलधर्मगोप्त्रे ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

श्री-पितरः ऊचुः—पितृलोक के वासियों ने कहा; श्राद्धानि—श्राद्ध कर्म (मृत पुरुषों को एक विशेष विधि से प्रदत्त भोज्य सामग्री); नः—हमारा; अधिबुभुजे—भोग किया; प्रसभम्—बल द्वारा; तनूजैः—अपने पुत्रों-पौत्रों द्वारा; दत्तानि—प्रदत्त; तीर्थ-समये—तीर्थ स्थानों में स्नान करते समय; अपि—भी; अपिबत्—पिया; तिल-अम्बु—तिल के साथ जलांजलि; तस्य—उस असुर के; उदरात्—पेट से; नख-विदीर्ण—नाखून से फाड़ा गया; वपात्—जिसकी आँतों की चमड़ी; यः—जिस (भगवान्) ने; आर्च्छत्—प्राप्त किया; तस्मै—उसको (भगवान् को); नमः—नमस्कार; नृ-हरये—नृहरि को जो आधे सिंह तथा आधे पुरुष के रूप में प्रकट हुए; अखिल—विश्वजनीन; धर्म—धार्मिक नियम; गोप्त्रे—पालन करने वाले।

पितृलोक के वासियों ने प्रार्थना की: हम ब्रह्माण्ड के धार्मिक नियमों के पालनकर्ता भगवान् नृसिंह देव को सादर नमस्कार करते हैं। आपने उस असुर को मार डाला है, जो हमारे श्राद्ध के अवसर पर हमारे पुत्रों-पौत्रों द्वारा अर्पित बलि को छीनकर खा जाता था और तीर्थस्थलों पर अर्पित की जाने वाली तिलांजलि को पी जाता था। हे प्रभु, आपने इस असुर को मारकर अपने नाखूनों से इसके पेट को विदीर्ण करके उसमें से समस्त चुराई हुई सामग्री निकाल ली है। अतएव हम आपको सादर नमस्कार करते हैं।

तात्पर्य : समस्त गृहस्थों का कर्तव्य है कि अपने दिवंगत पूर्वजों को अन्न की बलि दें, किन्तु हिरण्यकशिपु के काल में यह प्रथा रोक दी गई थी, कोई भी व्यक्ति अपने पितरों को श्राद्ध पिण्डदान नहीं दे सकता था। अतएव जब आसुरी शासन होता है, तो सारे वैदिक नियम अस्त-व्यस्त कर दिये जाते हैं, सारे यज्ञोत्सव रोक दिये जाते हैं और यज्ञ के सारे साधन आसुरी सरकार द्वारा छीन लिए जाते हैं। इससे अव्यवस्था फैल जाती है और फलस्वरूप सारा संसार नरक बन जाता है। अतएव जब सारे असुर नृसिंह देव द्वारा मार डाले जाते हैं, तो हर व्यक्ति को चैन मिलता है, चाहे वह किसी भी लोक का वासी हो।

श्रीसिद्धा ऊचुः

यो नो गतिं योगसिद्धामसाधु-

रहार्षीद्योगतपोबलेन ।

नाना दर्प तं नखैर्विददार

तस्मै तुभ्यं प्रणताः स्मो नृसिंह ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

श्री-सिद्धाः ऊचुः—सिद्धलोक के वासियों ने कहा; यः—जिस व्यक्ति ने; नः—हमारी; गतिम्—सिद्धि को; योग-सिद्धाम्—योग द्वारा प्राप्त; असाधुः—अत्यन्त असभ्य तथा असत्यनिष्ठ; अहार्षीत्—चुरा लिया; योग—योग; तपः—तथा तप का; बलेन—बलपूर्वक; नाना दर्पम्—सम्पत्ति, ऐश्वर्य तथा शक्ति के कारण घमंडी; तम्—उसको; नखैः—नाखूनों से; विददार—फाड़ डाला; तस्मै—उस; तुभ्यम्—तुम्हें; प्रणताः—नतमस्तक; स्मः—हम हैं; नृसिंह—हे नृसिंहदेव।

सिद्धलोक के वासियों ने प्रार्थना की: हे भगवान् नृसिंह देव, हम लोग सिद्धलोक के निवासी होने के कारण अष्टांग योग में स्वतःसिद्ध होते हैं। तो भी हिरण्यकशिपु इतना धूर्त था कि उसने अपने बल तथा तपस्या से हमारी सारी शक्तियाँ छीन ली थीं। इस तरह वह अपने योग-बल के प्रति घमंडी हो गया था। अब आपके नखों से इस दुष्ट का वध हो जाने के कारण हम आपको सादर नमस्कार करते हैं।

तात्पर्य : पृथ्वी पर ऐसे अनेक योगी हैं, जो जादू की तरह सोने के कुछ टुकड़े निर्मित करके कुछ-कुछ योगशक्ति का प्रदर्शन कर सकते हैं, किन्तु सिद्धलोक के वासी सचमुच ही योगशक्ति में अत्यन्त प्रबल होते हैं। वे वायुयानों के बिना ही एक लोक से दूसरे लोक तक उड़कर जा सकते हैं। यह लघिमा-सिद्धि कहलाती हैं। वे सचमुच ही बहुत हल्के हो सकते हैं और आकाश में उड़ सकते हैं। किन्तु हिरण्यकशिपु घोर तपस्या के द्वारा सिद्धलोक के भी वासियों को मात कर गया और उनके लिए उत्पात खड़ा करने लगा। सिद्धलोक के ये वासी हिरण्यकशिपु द्वारा परास्त भी कर दिये गये थे। अब जबकि हिरण्यकशिपु का वध भगवान् ने कर दिया है सिद्धलोक के वासियों को भी राहत का अनुभव हुआ।

श्रीविद्याधरा ऊचुः

विद्यां पृथग्धारणयानुराद्धां

न्यषेधदज्ञो बलवीर्यदृप्तः ।

स येन सङ्ख्ये पशुवद्धतस्तं

मायानृसिंहं प्रणताः स्म नित्यम् ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

श्री-विद्याधराः ऊचुः—विद्याधर लोक के निवासियों ने प्रार्थना की; विद्याम्—जो विद्याएँ (जिनसे प्रकट तथा अप्रकट हुआ जा सकता है); पृथक्—भिन्न-भिन्न; धारणया—मन के भीतर विविध ध्यानों से; अनुराद्धाम्—प्राप्त किया गया; न्यषेधत्—रोक दिया; अज्ञः—इस मूर्ख ने; बल-वीर्य-दृप्तः—शारीरिक शक्ति तथा हर एक को जीत लेने की सामर्थ्य से फूल कर; सः—वह (हिरण्यकशिपु); येन—जिसके द्वारा; सङ्ख्ये—युद्ध में; पशु-वत्—पशु के समान; हतः—मारा गया; तम्—उसको; माया-नृसिंहम्—अपनी माया के प्रभाव द्वारा नरसिंह रूप में प्रकट होने वाले नृसिंह देव को; प्रणताः—विनत; स्म—निश्चय ही; नित्यम्—शाश्वत।

विद्याधर के निवासियों ने प्रार्थना की: उस मूर्ख हिरण्यकशिपु ने विविध प्रकार के ध्यान के अनुसार प्रकट तथा अप्रकट होने की हमारी शक्ति पर प्रतिबन्ध लगा दिया था, क्योंकि उसे अपनी श्रेष्ठ शारीरिक शक्ति तथा अन्यो को जीत लेने की सामर्थ्य का घमण्ड था। अब भगवान् ने उसका उसी तरह वध कर दिया है जैसे वह असुर कोई पशु हो। हम भगवान् नृसिंह देव के उस लीला रूप को सादर प्रणाम करते हैं।

श्रीनागा ऊचुः

येन पापेन रत्नानि स्त्रीरत्नानि हृतानि नः ।

तद्वक्षःपाटनेनासां दत्तानन्द नमोऽस्तु ते ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

श्री-नागा: ऊचुः—नागलोक के वासी, जो नाग सदृश दिखते हैं; येन—जिस व्यक्ति से; पापेन—अत्यन्त पापी (हिरण्यकशिपु); रत्नानि—हमारे सिरों की मणियाँ; स्त्री-रत्नानि—सुन्दर स्त्रियाँ; हृतानि—हर ली गई; नः—हमारी; तत्—उसका; वक्षः-पाटनेन—वक्षस्थल को चीर कर; आसाम्—समस्त स्त्रियों का (जिनका अपहरण हुआ था); दत्त-आनन्द—हे आनन्द के स्रोत; नमः—हमारा सादर नमस्कार; अस्तु—हो; ते—तुम्हारे प्रति।

नागलोक के वासियों ने कहा : अत्यन्त पापी हिरण्यकशिपु ने हम सबके फणों की मणियाँ तथा हम सबकी सुन्दर पत्नियाँ छीन ली थीं। अब चूँकि उसके वक्षस्थल को आपने अपने नाखूनों से विदीर्ण कर दिया है, अतएव आप हमारी पत्नियों की परम प्रसन्नता के कारण हैं। इस तरह हम सभी मिलकर आपको सादर नमस्कार करते हैं।

तात्पर्य : यदि किसी की सम्पत्ति तथा पत्नी बलपूर्वक छीन ली जाये तो वह शान्तिपूर्वक नहीं रह सकता। पृथ्वीलोक के नीचे बसे नागलोक के सभी वासी अत्यन्त चिन्तित थे, क्योंकि हिरण्यकशिपु द्वारा उनकी सम्पत्ति चुरा ली गई थी और पत्नियों का अपहरण हो चुका था। अब हिरण्यकशिपु के मारे जाने से उनकी सम्पत्ति तथा उनकी पत्नियाँ वापस मिल चुकी थीं जिससे उनको परम प्रसन्नता हुई। विभिन्न लोकों के निवासियों ने भगवान् को सादर नमस्कार किया, क्योंकि हिरण्यकशिपु की मृत्यु से उन्हें उसासी मिली थी। अब हिरण्यकशिपु द्वारा किये गये उत्पातों की ही तरह सारे संसार में उत्पात हो रहे हैं, क्योंकि सरकारें आसुरी हैं। जैसाकि *श्रीमद्भागवत* के बारहवें स्कन्ध में बताया गया है, कलियुग के सरकारी कर्मचारी धूर्तों तथा लुटेरों जैसे होंगे। इस तरह एक ओर प्रजा खाद्यान्नो के अभाव से पीड़ित होगी और दूसरी ओर सरकार उस पर भारी कर लगाएगी। दूसरे शब्दों में, इस युग में विश्व के अधिकांश भागों में लोग हिरण्यकशिपु के शासन-सिद्धान्तों द्वारा उत्पीड़ित होंगे।

श्रीमनव ऊचुः
 मनवो वयं तव निदेशकारिणो
 दितिजेन देव परिभूतसेतवः ।
 भवता खलः स उपसंहतः प्रभो
 करवाम ते किमनुशाधि किङ्करान् ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

श्री-मनवः ऊचुः—सभी मनुओं ने यह कहकर नमस्कार किया; मनवः—संसारी कार्यों के नेता (विशेष रूप से भगवान् की सुरक्षा में विधिपूर्वक रहने के लिए मानवता को ज्ञान प्रदान करने में); वयम्—हम; तव—आपके; निदेश-कारिणः—आज्ञापालक; दिति-जेन—दिति के पुत्र हिरण्यकशिपु द्वारा; देव—हे प्रभु; परिभूत—अवहेलना करके; सेतवः—मानव समाज में वर्णाश्रम पद्धति सम्बन्धी नैतिक नियम; भवता—आपके द्वारा; खलः—दुष्ट; सः—वह; उपसंहतः—मारा गया; प्रभो—हे प्रभु; करवाम—हम करें; ते—तुम्हारा; किम्—क्या; अनुशाधि—कृपया आदेश दें; किङ्करान्—अपने शाश्वत सेवकों को ।

समस्त मनुओं ने इस प्रकार प्रार्थना की: हे प्रभो, हम सारे मनु आपके आज्ञापालक के रूप में मानव समाज के लिए विधि प्रदान करते हैं किन्तु इस महान् असुर हिरण्यकशिपु की क्षणभंगुर श्रेष्ठता के कारण वर्णाश्रम धर्म पालन विषयक हमारे नियम नष्ट हो गये थे। हे स्वामी, अब आपके द्वारा इस महान् असुर का वध हो जाने से हम अपनी सहज स्थिति में हैं। कृपया अपने इन शाश्वत दासों को आज्ञा दें कि अब वे क्या करें।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण ने भगवद्गीता में अनेक स्थलों पर वर्णाश्रम धर्म का उल्लेख किया है। वे लोगों को इस वर्णाश्रम धर्म की शिक्षा इसलिए देते हैं जिससे वे चारों वर्णों तथा चारों आश्रमों के नियमों का पालन करते हुए शान्तिपूर्वक मानव जीवन बिता सकें। और इस प्रकार आध्यात्मिक ज्ञान में उन्नति कर सकें। मनुओं ने मनुसंहिता का संकलन किया। संहिता का अर्थ है वैदिक ज्ञान तथा मनु शब्द यह बताता है कि इस ज्ञान को देने वाले मनु हैं। ये मनु कभी तो भगवान् के अवतार होते हैं और कभी शक्त्याविष्ट जीव। बहुत काल पूर्व भगवान् कृष्ण ने सूर्य को उपदेश दिया था। ये मनु सामान्यतः सूर्यदेव के पुत्र होते हैं। अतएव श्रीकृष्ण ने अर्जुन से भगवद्गीता की महत्ता बताते हुए कहा—इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवान् अहम् अव्ययम् विवस्वान् मनवे प्राह—“यह उपदेश विवस्वान् सूर्यदेव को दिया गया जिन्होंने इसे अपने पुत्र मनु को दिया।” मनु ने जो विधि प्रदान की वह मनुसंहिता कहलाती है और जिसमें मनुष्य किस तरह जीवन-यापन करें इसके विषय में वर्ण तथा आश्रम पर आधारित आदेश हैं। ये अत्यन्त वैज्ञानिक जीवन-विधियाँ हैं, लेकिन हिरण्यकशिपु जैसे असुरों के शासन में मानव समाज छिन्न होकर निम्न से निम्नतर होता जाता है। इस तरह विश्व में कहीं शान्ति नहीं रह जाती। निष्कर्ष यह

निकला कि यदि हम मानव समाज में शान्ति तथा व्यवस्था चाहते हैं, तो हमें *मनुसंहिता* में दिये गये नियमों का पालन करना चाहिए जिसकी पुष्टि भगवान् कृष्ण ने की है।

श्रीप्रजापतय ऊचुः
 प्रजेशा वयं ते परेशाभिसृष्टा
 न येन प्रजा वै सृजामो निषिद्धाः ।
 स एष त्वया भिन्नवक्षा नु शेते
 जगन्मङ्गलं सत्त्वमूर्तेऽवतारः ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

श्री-प्रजापतयः ऊचुः—विभिन्न प्राणियों को उत्पन्न करने वाले महापुरुषों ने यह कहकर प्रार्थनाएँ कीं; प्रजा-ईशाः—जीवों की अनेक पीढ़ियों को जन्म देने वाले ब्रह्मा द्वारा उत्पन्न सारे प्रजापति; वयम्—हम सभी; ते—तुम्हारे; पर-ईश—हे परमेश्वर; अभिसृष्टाः—उत्पन्न; न—नहीं; येन—जिस (हिरण्यकशिपु) से; प्रजाः—सारे जीव; वै—निस्सन्देह; सृजामः—हम उत्पन्न करते हैं; निषिद्धाः—मना किया गया; सः—वह (हिरण्यकशिपु); एषः—यह; त्वया—तुम्हारे द्वारा; भिन्न-वक्षाः—जिसका वक्षस्थल विदीर्ण किया जा चुका है; नु—निस्सन्देह; शेते—शयन करता है; जगत्-मङ्गलम्—सारे जगत के कल्याण के लिए; सत्त्व-मूर्ते—शुद्ध सतोगुण के दिव्य रूप में; अवतारः—यह अवतार।

प्रजापतियों ने इस प्रकार स्तुति की: हे परमेश्वर, हे ब्रह्मा तथा शिव जी के भी पूज्य प्रभु, हम सारे प्रजापति आपके द्वारा दी गई आज्ञा के पालन के लिए उत्पन्न किये गये थे, किन्तु हिरण्यकशिपु ने हमें और उत्तम सन्तान उत्पन्न करने से रोक दिया। अब यह असुर हमारे समक्ष मृत पड़ा है, जिसके वक्षस्थल को आपने विदीर्ण कर दिया है। अतएव हम आपको सादर नमस्कार करते हैं, क्योंकि इस शुद्ध सात्विक रूप में आपका यह अवतार समग्र ब्रह्माण्ड के कल्याण के निमित्त है।

श्रीगन्धर्वा ऊचुः
 वयं विभो ते नटनाट्यगायका
 येनात्मसाद्वीर्यबलौजसा कृताः ।
 स एष नीतो भवता दशामिमां
 किमुत्पथस्थः कुशलाय कल्पते ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

श्री-गन्धर्वाः ऊचुः—गन्धर्वलोक के निवासी (जो सामान्यतः स्वर्ग के गायक होते हैं) बोले; वयम्—हम; विभो—हे प्रभु; ते—तुम्हारे; नट-नाट्य-गायकाः—नाटक के नर्तक तथा गायक; येन—जिससे; आत्मसात्—पराधीन; वीर्य—उसके पराक्रम; बल—तथा शारीरिक शक्ति के; ओजसा—प्रभाव से; कृताः—बने (लाये हुए); सः—वह (हिरण्यकशिपु); एषः—यह; नीतः—लाया गया; भवता—आपके द्वारा; दशाम् इमाम्—इस दशा को; किम्—क्या; उत्पथस्थः—कुमार्गगामी; कुशलाय—कल्याण के लिए; कल्पते—समर्थ है।

गन्धर्वलोक के निवासियों ने प्रार्थना की: हे भगवान्, हम नाच तथा अभिनय में गायन द्वारा आपकी सेवा में लगे रहते थे, किन्तु इस हिरण्यकशिपु ने अपनी शारीरिक शक्ति तथा पराक्रम से हमें अपने अधीन बना लिया था। अब आपके द्वारा यह इस अधम दशा को प्राप्त हुआ है। भला हिरण्यकशिपु जैसे कुमार्गगामी के कार्यकलापों से हमें क्या लाभ हो सकता है?

तात्पर्य : भगवान् का अत्यन्त आज्ञाकारी सेवक बनकर मनुष्य अत्यन्त शक्तिशाली, प्रभावशाली तथा तेजवान् बन जाता है, किन्तु कुमार्गगामी असुरों का पतन हिरण्यकशिपु के समान होता है। भले ही हिरण्यकशिपु जैसे व्यक्ति कुछ काल तक अत्यन्त शक्तिमान रहते रहे, किन्तु भगवान् के आज्ञाकारी दास—यथा देवता—सदैव शक्तिशाली बने रहते हैं। भगवत्कृपा से वे हिरण्यकशिपु के प्रभाव पर विजय पाते हैं।

श्रीचरणा ऊचुः

हरे तवाङ्घ्रिपङ्कजं भवापवर्गमाश्रिताः ।

यदेष साधुहृच्छयस्त्वयासुरः समापितः ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

श्री-चरणाः ऊचुः—चारणलोक के निवासियों ने कहा; हरे—हे भगवान्; तव—तुम्हारे; अङ्घ्रि-पङ्कजम्—चरणकमल; भव-अपवर्गम्—संसार के कल्मष से मुक्त होने के लिए एकमात्र शरण; आश्रिताः—शरणागत; यत्—क्योंकि; एषः—यह; साधु-हृत्-शयः—समस्त ईमानदार मनुष्यों के हृदयों में संकट; त्वया—आपके द्वारा; असुरः—असुर (हिरण्यकशिपु); समापितः—मार डाला गया।

चारणलोक के निवासियों ने कहा : हे प्रभु, आपने उस असुर हिरण्यकशिपु को विनष्ट कर दिया जो सारे निष्कपट पुरुषों के हृदयों में आतंक बना हुआ था। अब हमें शान्ति मिली है। हम सभी आपके उन चरणकमलों की शरण ग्रहण करते हैं, जो बद्धजीव को भौतिक कल्मष से मुक्ति दिलानेवाले हैं।

तात्पर्य : भगवान् अपने नरहरि या नृसिंह देव रूप में उन दुष्टों का वध करने के लिए सदैव उद्यत रहते हैं, जो निष्कपट भक्तों के मनो में अशान्ति उत्पन्न करते हैं। भक्तों को कृष्णभावनामृत आन्दोलन का प्रसार करने के लिए संसार भर में अनेक संकटों तथा अवरोधों का सामना करना होता है किन्तु जो आज्ञाकारी दास भक्तिपूर्वक भगवान् का उपदेश देता है उसे यह जान लेना चाहिए कि नृसिंह देव सदैव उसके रक्षक होते हैं।

श्रीयक्षा ऊचुः
वयमनुचरमुख्याः कर्मभिस्ते मनोज्ञै-
स्त इह दितिसुतेन प्रापिता वाहकत्वम् ।
स तु जनपरितापं तत्कृतं जानता ते
नरहर उपनीतः पञ्चतां पञ्चविंश ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

श्री-यक्षाः ऊचुः—यक्षलोक के निवासियों ने प्रार्थना की; वयम्—हम; अनुचर-मुख्याः—आपके प्रमुख सेवक; कर्मभिः—सेवाओं से; ते—तुम्हारे; मनो-ज्ञैः—अत्यन्त अच्छे लगने वाले; ते—वे; इह—इस समय; दिति-सुतेन—दिति पुत्र हिरण्यकशिपु द्वारा; प्रापिताः—बलात् लगाये गये; वाहकत्वम्—कहार के कार्य में; सः—वह; तु—लेकिन; जन-परितापम्—मनुष्य की दयनीय स्थिति; तत्-कृतम्—उसके द्वारा की गई; जानता—जानते हुए; ते—तुम्हारे द्वारा; नर-हर—हे नृसिंह रूप; उपनीतः—प्राप्त, लाया गया है; पञ्चताम्—मृत्यु को; पञ्च-विंश—हे पच्चीसवें सिद्धान्त (अन्य चौबीस तत्त्वों के नियंत्रक)।

यक्षलोक के निवासियों ने प्रार्थना की: हे चौबीस तत्त्वों के नियामक, हम आपको भाने वाली सेवाएँ करने के कारण आपके सर्वश्रेष्ठ सेवक माने जाते हैं फिर भी दितिपुत्र हिरण्यकशिपु के आदेश पर हमसे पालकी ढोने का कार्य लिया जाता था। हे नृसिंह देव, आप यह जानते हैं कि इस असुर ने किस तरह सबों को कष्ट पहुँचाया है, किन्तु अब आपने इसका वध कर दिया है और इसका शरीर पंच तत्त्वों में मिल गया है।

तात्पर्य : परमेश्वर दस इन्द्रियों, पाँचों भौतिक तत्त्वों, पाँच इन्द्रियविषयों, मन, बुद्धि-अहंकार तथा आत्मा के नियामक हैं, अतएव उन्हें पंचविंश अर्थात् पच्चीसवां तत्त्व कहा गया है। यक्ष लोक के वासी समस्त सेवकों में श्रेष्ठ माने जाते हैं, किन्तु हिरण्यकशिपु उनसे पालकी ढोवाता था। सारा ब्रह्माण्ड हिरण्यकशिपु से संतप्त था, किन्तु अब जब उसका शरीर मृत्यु को प्राप्त हो चुका था तो सबों को शान्ति हुई। हिरण्यकशिपु की मृत्यु से यक्ष पुनः भगवान् की सेवा में लग गये। इस तरह उन सबों ने भगवान् के प्रति कृतज्ञता प्रकट की और उनसे प्रार्थना की।

श्रीकिम्पुरुषा ऊचुः
वयं किम्पुरुषास्त्वं तु महापुरुष ईश्वरः ।
अयं कुपुरुषो नष्टो धिक्कृतः साधुभिर्यदा ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ

श्री-किम्पुरुषाः ऊचुः—किम्पुरुष लोक के निवासियों ने कहा; वयम्—हम; किम्पुरुषाः—किम्पुरुष लोक के वासी अथवा क्षुद्र प्राणी; त्वम्—आप; तु—फिर भी; महा-पुरुषः—परमेश्वर; ईश्वरः—परम नियन्ता; अयम्—यह; कु-पुरुषः—अत्यन्त पापी पुरुष, हिरण्यकशिपु; नष्टः—वध किया गया; धिक्-कृतः—तिरस्कृत होकर; साधुभिः—साधु पुरुषों द्वारा; यदा—जब।

किम्पुरुषलोक के वासियों ने कहा : हम क्षुद्र जीव हैं और आप परम नियामक महापुरुष हैं। अतएव हम आपकी समुचित स्तुति कैसे कर सकते हैं? जब भक्तों ने तंग आकर इस असुर का तिरस्कार कर दिया तो आपने इसका वध कर दिया।

तात्पर्य : भगवान् ने स्वयं भगवद्गीता (४.७-८) में इस धरा पर अपने प्राकट्य का कारण बतलाया है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।

धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥

“जब-जब धार्मिक सिद्धान्तों का हास होता है और अधर्म में उल्लेखनीय वृद्धि होती है उस समय मैं स्वयं अवतार लेता हूँ। मैं पवित्रात्माओं का उद्धार करने तथा दुष्टों का संहार करने तथा साथ ही धार्मिक सिद्धान्तों को पुनःस्थापित करने के लिए युग-युग में अवतरित होता हूँ।” भगवान् दो प्रकार के कार्य करने के लिए अवतरित होते हैं—असुरों को मारने तथा भक्तों की रक्षा करने। जब भक्त असुरों द्वारा अत्यधिक सताये जाते हैं, तो भक्तों की रक्षा करने के लिए भगवान् विविध अवतारों में प्रकट होते हैं। प्रह्लाद महाराज के चरण-चिह्नों पर चलने वाले भक्तों को अभक्तों के आसुरी कार्यकलापों से कभी विचलित नहीं होना चाहिए, अपितु उन्हें भगवान् के सत्यनिष्ठ भक्त के रूप में अपने नियमों पर अटल रहना चाहिए और आश्वस्त रहना चाहिए कि आसुरी कार्यकलापों से उनकी भक्ति रुकेगी नहीं।

श्रीवैतालिका ऊचुः

सभासु सत्रेषु तवामलं यशो

गीत्वा सपर्या महतीं लभामहे ।

यस्तामनैषीद्वशमेष दुर्जनो

द्विष्ट्या हतस्ते भगवन् यथा मयः ॥ ५४ ॥

शब्दार्थ

श्री-वैतालिका: ऊचुः—वैतालिकलोक के वासियों ने कहा; सभासु—सभाओं में; सत्रेषु—यज्ञ-स्थल में; तव—तुम्हारा; अमलम्—किसी प्रकार के भी कल्मष से रहित, निर्मल; यशः—यश, कीर्ति; गीत्वा—गाते हुए; सपर्याम्—सम्माननीय पद;

महतीम्—महान्; लभामहे—हमने प्राप्त किया; यः—जो; ताम्—उस (आदरणीय पद) को; अनैषीत्—ले आया; वशम्—अपने वश में; एषः—यह; दुर्जनः—कुटिल व्यक्ति; द्विष्ट्या—सौभाग्य से; हतः—मारा गया; ते—तुम्हारे द्वारा; भगवन्—हे भगवान्; यथा—जिस तरह; आमयः—रोग।

वैतालिकलोक के निवासियों ने कहा : हे प्रभु, सभाओं तथा यज्ञस्थलों में आपके निर्मल यश का गायन करने के कारण प्रत्येक व्यक्ति हमें आदर प्रदान करता था। किन्तु इस असुर ने हमारे उस पद को छीन लिया था। अब हमारा बड़ा भाग्य है कि आपने इस महान् असुर का उसी तरह वध कर दिया जिस प्रकार कोई भीषण रोग को अच्छा कर देता है।

श्रीकिन्नरा ऊचुः

वयमीश किन्नरगणास्तवानुगा

दितिजेन विष्टिममुनानुकारिताः ।

भवता हरे स वृजिनोऽवसादितो

नरसिंह नाथ विभवाय नो भव ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ

श्री-किन्नरा: ऊचुः—किन्नर लोक के निवासियों ने कहा; वयम्—हम सभी; ईश—हे ईश्वर; किन्नर-गणाः—किन्नर लोक के वासी; तव—तुम्हारे; अनुगाः—आज्ञाकारी दास; दिति-जेन—दिति पुत्र द्वारा; विष्टिम्—बिना किसी प्रकार के पारिश्रमिक के सेवा, बेगार; अमुना—उससे; अनुकारिताः—कराया गया; भवता—आपके द्वारा; हरे—हे भगवान्; सः—वह; वृजिनः—अत्यन्त पापी; अवसादितः—विनष्ट; नरसिंह—हे नृसिंह देव; नाथ—हे स्वामी; विभवाय—सुख तथा ऐश्वर्य के लिए; नः—हमारे; भव—हों।

किन्नरों ने कहा : हे परम नियन्ता, हम आपके सतत सेवक हैं, लेकिन आपकी सेवा में युक्त न होकर हम सभी इस असुर की बेगार में लगाये गये थे। अब आपने इस पापी का वध कर दिया है, अतएव हे नृसिंहदेव, हे स्वामी, हम आपको सादर नमस्कार करते हैं। कृपा करके हमारे संरक्षक बने रहें।

श्रीविष्णुपार्षदा ऊचुः

अद्यैतद्धरिनररूपमद्भुतं ते

दृष्टं नः शरणद सर्वलोकशर्म ।

सोऽयं ते विधिकर ईश विप्रशप्त-

स्तस्येदं निधनमनुग्रहाय विद्मः ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ

श्री-विष्णु-पार्षदा: ऊचुः—वैकुण्ठलोक के भगवान् विष्णु के पार्षदों ने कहा; अद्य—आज; एतत्—यह; हरि-नर—आधा सिंह तथा आधा पुरुष; रूपम्—रूप को; अद्भुतम्—अद्भुत; ते—तुम्हारा; दृष्टम्—देखा हुआ; नः—हमारा; शरण-द—शाश्वत शरण प्रदान करने वाला; सर्व-लोक-शर्म—विभिन्न लोकों में सौभाग्य लाने वाला; सः—वह; अयम्—यह; ते—तुम्हारा; विधिकरः—आज्ञापालक (दास); ईश—हे ईश्वर; विप्र-शप्तः—ब्राह्मण द्वारा शापित; तस्य—उसका; इदम्—यह; निधनम्—वध; अनुग्रहाय—विशेष कृपा के लिए; विद्मः—हम समझते हैं।

विष्णु के वैकुण्ठलोक के पार्षदों ने यह प्रार्थना की: हे स्वामी, हे शरणदाता, आज हमने नृसिंहदेव के रूप में आपके अद्भुत रूप का दर्शन किया है, जो समस्त जगत में सौभाग्य लाने वाला है। हे भगवान्, हम यह समझते हैं कि हिरण्यकशिपु आपकी सेवा में रत रहने वाला जय ही था, किन्तु उसे ब्राह्मणों ने शाप दे दिया था जिससे उसे असुर का शरीर प्राप्त हुआ था। हम समझते हैं कि उसका मारा जाना उस पर आपकी विशेष कृपा है।

तात्पर्य : हिरण्यकशिपु का इस धरा पर आविर्भाव तथा भगवान् के शत्रु के रूप में कार्यशील रहना पूर्वनियोजित था। जय तथा विजय को सनक, सनत्कुमार, सनन्दन तथा सनातन नामक ब्राह्मणों ने शाप दिया था, क्योंकि इन दोनों ने चारों कुमारों को रोका था। भगवान् ने अपने इन सेवकों को दिये गये शाप को स्वीकार किया। वे भौतिक जगत में जाने और शाप से मुक्त होने पर वैकुण्ठलोक वापस आने के लिए राजी हो गये। यद्यपि जय तथा विजय अत्यन्त उद्विग्न थे, लेकिन भगवान् ने उन्हें सलाह दी कि वे शत्रु की तरह कार्य करें जिससे तीन जन्मों के बाद वे वापस आ सकें, अन्यथा सामान्य तौर पर सात जन्म लेने पड़ते हैं। इस आदेश पर जय तथा विजय ने भगवान् के शत्रुओं की भूमिका निभाई और अब जब वे दोनों मृत थे तो समस्त विष्णु दूतों ने समझा कि भगवान् द्वारा हिरण्यकशिपु का वध एक प्रकार से उस पर विशेष कृपा थी।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के सप्तम स्कन्ध के अन्तर्गत “भगवान् नृसिंहदेव द्वारा असुरराज का वध” नामक आठवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।